ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—५६

माटी हो गई सोना

[बल और बलिदानकी जीवन-चेतना देनेवाले
सत्रह अमर अक्षर-चित्र]

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन एम० ए०

प्रकाशक
अयोध्याप्रसाद गोयलीय
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

प्रथम संस्करण
१९५७ ई०

मूल्य दो रुपये

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

समर्पण

प्यारे राणा प्रताप,

तुम जीवनभर जगलोमे भटके। तुम्हे न सुख मिला, न सफलता और एक दिन जगलोमे ही तुम्हारा जीवन एक साधारण जीवनकी तरह समाप्त हो गया। तुम दिल्लीके तख्तसे समझौताकर सुख-सफलता पा सकते थे, पर तुमने बुद्धिकी यह बात कभी नही मानी।

प्यारे त्रात्स्की,

तुम रूसकी महान् क्रान्तिके पिता थे और उचित था कि लेनिनके बाद तुम्ही देशकी पतवार सँभालने, पर तुम निर्वासित रहे, दर-दरकी ठोकरे खाते फिरे और अतमे तुम्हारा महान् मस्तिष्क कुल्हाडीसे चीर दिया गया। तुम स्टालिनसे समझौताकर सुख-सफलता पा सकते थे, पर बुद्धिकी यह बात तुमने कभी नही मानी।

मेरे प्रताप, मेरे त्रात्स्की,

तुम्हारी अ-बुद्धियोने मुझे जीवनभर प्रेरणा दी और मैने बाहरी सुख-सफलताओको कभी क्षणभर और कणभर भी महत्त्व नही दिया। तुम्हारा ऋण उतारनेकी क्षमता मुझमे नही, मै तो शहीदोकी ये जीवन-कथाएँ श्रद्धाञ्जलि रूपमे ही तुम्हे समर्पित कर रहा हूँ।

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

परिचयके बोल

मृत्यु जीवनका अन्त है, यह उनकी राय है, जो जीते नही, जिन्हे जीना पडता है !

मृत्यु जीवनकी विवशता है, यह उनकी राय है, जिन्हे और चाहे जो आये जीना नही आता !

मृत्यु जीवनका मूल्य है, यह उनकी राय है, जिन्हे जीवनका ज्ञान है कि वह है क्या ?

पर मृत्युसे हम अपने जीवनका पूरा मूल्य वसूल करेगे, यह उनकी घोपणा है, जो जीवनको जीनेकी तरह जीते है।

ये ही है, जो मृत्युको ठीक तरह पहचानते है; क्योंकि इनकी दृष्टिमे मृत्यु जीवनकी मित्र है और वही है, जो जीवनको सच्चा जीवन बनाये।

अगले पन्नोमे देश-विदेशके कुछ मानव जी-जाग रहे है और कोई चाहे, तो उससे वे बातचीत भी करते है।

ये मानव वैज्ञानिक सत्य है कि कभीके मर चुके, पर एक आध्यात्मिक सत्य है कि आज भी वे जीवित है और सदा जीवित रहेगे।

उनका सन्देश है कि मृत्यु उसे खाती है, जो उससे डरता है और उसे खिलाती है, जो अपने कदमो उसके द्वार आ पुकारता है !

इस सन्देशके सुने जानेकी आज आवश्यकता है।

सुने जानेकी, पर सिनेमाके गीतकी तरह नहीं, मन्त्रकी तरह, जो हृदयमे समाये और आचरणमे आये !

मृत्यु विश्वव्यापी तत्त्व है, पर उसके सम्बन्धसे सबसे बडी बात भारतमे ही कही गई है—"मनुष्य जिस तरह अपने पुराने वस्त्र उतारकर, नये पहन लेता है, उसी तरह एक देहको छोडकर वह दूसरी धारण करता है !"

इस सन्देशके सुने जानेकी आज गम्भीर आवश्यकता है, क्योंकि भारतीय राष्ट्रका मानस मृत्युके भयसे यों अभिभूत हो उठा है कि हमारा राष्ट्रीय चरित्र ही कुण्ठित हो चला है।

मृत्युका भय जीवनके मोहको जन्म देता है और जीवनका मोह आराम-सुविधाकी लिप्साको और तब मनुष्य इस तरह जीने लगता है कि बस वह एक मनुष्य है और पूरे समाजसे उसका कोई सम्बन्ध नही। उसे अपना सुख चाहिए और बस अपना ही सुख!

इसे यों कहे कि तब उसकी मूल वृत्ति होती है शोपण—दूसरोको खाकर पनपना और मिट जाती है उसकी मानवीय यज्ञवृत्ति कि वह दूसरोंके लिए जिये और उत्सर्ग हो।

पर-दृष्टि, पर-चिन्ता ही राष्ट्रीय चरित्र है और वह न रहे, तो राष्ट्रका अस्तित्व भले ही बना रहे, व्यक्तित्व कहाँ रहेगा?

इन कथाओमें इस व्यक्तित्वका पोपण है और यही मै कहता हूँ कि ये कथाएँ भारतकी नई पीढ़ीके लिए एक सुन्दर उपहार है।

× × ×

ये कथाएं इतिहासकी है—घटित घटनाएँ है, मेरी कल्पनाका वैभव-चमत्कार नही, पर क्या मै एक 'स्टेनो' ही हूँ कि इतिहासका 'डिक्टेशन' मैने कागज पर ले लिया?

मैं भला इस प्रश्नपर हाँ कैसे कह सकता हूँ?

जर्मन दार्शनिक नीत्शेका एक उद्धरण युगो पहले कही पढा था, जो इस प्रकार है—

"जो भी साहित्य लिखा जाता है, उसमे मै वही पसन्द करता हूँ, जिसे आदमी अपने खूनसे लिखता है। हे साहित्यिक, तू अपनी रचनाएँ एक बार अपने खूनसे लिख। फिर तू समझेगा कि ख़ून ही साहित्यकी आत्मा है।"

मै साहित्यकारकी सम्पूर्ण ईमानदारीके साथ इस स्थितिमे हूँ

कि कहूँ—इन कथाओंको मैंने अपने खूनसे लिखा है; कलेजेके खूनसे, आत्माके खूनसे और कलेजेका वह खून ही इन कथाओं की कला है ।

इन कथाओंके पात्र मेरे लिए कभी कोरे पात्र नही रहे—वे मेरे निकट सदा सजीव बन्धु रहे है । मैंने उनके साथ बाते की हैं, मै उनके साथ रोया-हँसा हूँ और हँसीकी बात नहीं, फाँसी भी चढा हूँ, जीतेजी जला भी हूँ ! शायद कोरा अहङ्कार ही हो, पर मुझे तो सदा यही लगा है कि वे इतिहासके कङ्काल थे, मैंने उन्हें अपना रक्त-मांस देकर यो खडाकर दिया है । इस स्थितिमे भारतकी नई पीढीको जब आज उन्हे भेट कर रहा हूँ, तो अपना रक्त ही तो भेट कर रहा हूँ । मेरी शुभ कामना है कि मेरे देशकी नई पीढी मेरे इस रक्तसे तरोताज़ा हो जीवनके क्षेत्रमें आगे बढे !

× × ×

एक ज़रूरी बात—यों हर शीर्षकके नीचे एक पात्र है, पर हम उसे एक पात्र ही मान ले, तो उसकी कहानी ही पढ पायेंगे, उसे समझेंगे नहीं, अपनायेंगे नही, पायेंगे नही !

तो हम समझे कि हर पात्र एक विशिष्ट युगका प्रतिनिधि है, प्रतीक है । कांग्रेसके झण्डेके नीचे राष्ट्रने भारतकी स्वतंत्रताके लिए जो बलिदान किया, सत्यवती बहनमे वही तो केन्द्रित है और भारतकी स्वतत्रताके बाद उस स्वतत्रताको स्थित रखनेके लिए जो बलिदान हुआ, भाई शोइब उसीकी तो एक तस्वीर है । सब पात्रोंको पाठक यों ही पढे-परखे-पहचाने !

× × ×

बुधारू और पुनियाका स्कैच भाई कन्हैयालाल धूसियाने लिखा था कि मैंने उसे अपने ढंग पर कर लिया और पुस्तकके नामकरणका श्रेय श्रीमती विद्यावती कौशलको है, पर दोनोंको धन्यवाद देनेकी शक्ति मुझमे नही !

बस !

विकास लिमिटेड
सहारनपुर : उत्तरप्रदेश

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

विषय-क्रम

बयालीसके ज्वारकी उन लहरोंमें

- हम उन दिनों घहरा रहे थे, वे उन दिनों घबरा रहे थे ।
- हम उन दिनों पूरे जोशमें थे, वे उन दिनों पूरे जोरमें थे ।
- उनकी महानता अस्त होनेके खतरेमें थी, हमारी महानता फिरसे जन्म लेनेकी सम्भावनामें ।
- उनके साथ लगभग एक शताब्दीमें सजोयी सैनिक शक्ति थी, हमारे साथ लगभग एक शताब्दीमें सुलगायी विद्रोही भावनाकी आग ।
- दाव चूकनेमें उनकी मौत थी, दाव चूकनेमें हमारी घोर पराजय ।
- वे अपनी उखडती जड जमानेमें जुटे थे, हम अपनी सदियोंसे उखडी पडी जड जमाने में ।
- हमारा उखडना ही उनका जमना था, हमारा जमना ही उनका उखडना था ।
- वे थे हमारे शासक अंग्रेज, हम थे उनके शासित भारतवासी ।
- और यों हम दोनों १९४२ में जान-जानकी बाजी खेल रहे थे !
- हमारी देश-भक्तिका नारा था—निकल जाओ यहाँसे, उनकी सैन्य शक्तिका उद्घोष था—क्यों निकल जाएँ ?
- फैसले बहुत हो चुके थे, इसबार किसी एकको मिटना था, इसलिए न वे कोई कोर-कसर छोड रहे थे, न हम ।
- अतीत साक्षी है—वे जीत गये, हम हार गये ।
- वर्तमान साक्षी है—वे जीत कर हार गये, हम हार कर जीत गये !
- इतिहास साक्षी है कि वे ऐसे गये कि एक बात हो गई ।
- संसार साक्षी है कि हम ऐसे जमे कि एक चमत्कार हो गया ।

आठ अगस्त १९४२ को बम्बईमे राष्ट्रीय महासभाने 'भारत छोडो' प्रस्ताव पास किया और नौ अगस्त १९४२ को प्रातःकाल महासभाके नेता और कार्यकर्त्ता देश भरसे चुन चुन कर जेलोमे बन्द कर दिये गये। हमारे शत्रुओंने आपसमे कहा—अब यह टण्टा हमेशाको मिटा और इस देशमे ऐसा अब कोई नही बचा, जो जनताको बगावतकी सीख दे। २-४ भुनगे इधर-उधर हो गये है, पर इससे क्या, आज नही तो कल, हमारी छिपकलियाँ उन्हे चाट, चटखारा ले लेगी !

भारतके शत्रुओका सबसे बडा भरोसा यह था कि बयालीसकी बगावतका नक्शा अभी जनताके सामने नही आया था, क्रान्तिके प्रधान पुरोहित महात्मा गाधीके बस्तेमे ही था कि वे अपने बस्तेसहित पकड लिये गये थे ! क्या यह सम्भव है कि गाधीजीने उस नक्शेकी कापियाँ पहले ही अपने सिपाहियोमे बॉट दी हो ? अग्रेजी शासनके मस्तिष्कने इस प्रश्नपर विचार किया था और अन्दाजको लम्बीसे लम्बी ढील देकर गिरफ्तारीके लिए सूची बनाई थी। उसे विश्वास था कि अब ऐसा कोई आदमी जेलसे बाहर नही, जिसके पास वह नक्शा हो ! 'हमने पैदा होनेसे पहले ही क्रान्तिके शिशुको दबोच लिया !' यह शासनके मस्तिष्ककी वाणी थी। ओह, किसी दिन कस भी कृष्णके सम्बन्धमे यो ही निश्चिन्त होकर सो गया था।

इस निश्चिन्ततामें भी अंगरेजके मन पर एक बोझ था—इस निरीह देश पर उसके द्वारा किये गये अत्याचारोका बोझ ! वे द्वितीय महायुद्धके दिन थे—उसे संसारमे अपनी साख भी रखनी थी। भारत-मत्री एमरीने इगलैण्डके रेडियोसे ससारको अपने इस व्यापक दमनका एक 'जस्टीफिकेशन' दिया ! उसने कहा—काग्रेसने एक भयङ्कर क्रान्तिका प्रोग्राम बनाया था, जिसमे स्टेशन फूँकना, लाइने तोडना, थानो पर कब्जा करना और तोड़-फोड और फूँका-फूँकीका हिसात्मक कार्यक्रम भी था, इसीलिए हमे सब काग्रेसियोको एक साथ पकडना पड़ा !

इस भाषणने देशको नया प्रकाश ही नही दिया, नया बल भी दिया। नेताओंकी सामूहिक गिरफ्तारीसे जनताके हृदयोंमे जो आग सिन्धडी थी, वह एमरीके भाषणसे भडक उठी। जोश तो था ही, राह भी अब अन्धेरेमें न रही और बिना किसी नेतृत्वके जनता उभरकर खडी हो गई।

इस उभारमें एक हुकार थी—क्या कहते हो तुम, कि यह टण्टा हमेशाको मिटा और इस देशमे ऐसा अब कोई नहीं बचा, जो जनता को बगावतकी सीख दे। २–४ भुनगे इधर-उधर हो गये है, पर इससे क्या, आज नही, तो कल हमारी छिपकलियाँ उन्हे चाट, चटखारा ले लेगी!

सुनो, हमे किसी सीखकी जरूरत नहीं। विद्रोहके नाग अब जाग उठे है, जो तुम्हारी इन छिपकलियोको एक ही सपाटेमें सटक जायँगे और तुम्हें ऐसा डसेंगे कि तुम अपने वारिसोंके नाम वसीयत भी न लिख सको।

यह हुकार कोरी हुकार न थी, इसके पीछे जीवन-ज्वालाकी लपलपाती लपटे थी। अगरेजी शासनकी शक्तिके केन्द्र पुलिस-थाने, डाकघर, स्टेशन, इन लपटोमे पड स्वाहा हो चले। केन्द्रोका सम्बन्ध देहातोसे कट गया और अगरेजी शासनके हाथ-पैर सन्नाटेमे आ गये। सारा देश युद्ध-भूमिमे परिणत हो गया—जो न लडे गद्दार!

देखते-देखते छोटे-छोटे देहातो तककी गलियाँ गूँज उठी—

रणभेरी बज उठी वीरवर, पहनो केशरिया बाना!
मिट जाओ वतन पर इसी तरह जिस तरह शमा पर परवाना!!

मातके वीर सपूतो की
हाँ, पूतोकी, हाँ पूतोकी,
आज कसौटी होना है!
देखें कौन निकलता है पीतल
और कौन निकलता सोना है!

कुछ छितर जाती, पर लोग फिर आ जुटते, नये नारे फूटते, जोश फिर उबाल खा जाता, भीड फिर आगे बढने लगती।

योंही रुकते, बढते, पिटते, उमडते यह भीड सेक्रेट्रियेट पर पहुँची तो देखा अगरेज जिलाधीश गोरखा पलटनकी टुकडी लिये वहाँ पहलेसे मौजूद है। उसे देखकर कोई डरा नहीं, खिसका नहीं, उल्टे लोग और भी जोशमे भर गये—

नही रखनी सरकार, भाइयो, नही रखनी !
अगरेजी सरकार भाइयो, नही रखनी !!

नारोंकी गूँज ऐसी थी कि पेड-पत्ते तक बोल-से उठे—हिन्दुस्तान छोड जाओ ! क्विट इण्डिया ! इन्कलाब जिन्दाबाद !

अपने राष्ट्रका तिरगा झण्डा लिये कुछ किशोर गोल गुम्बदकी ओर बढे, तो गोरखा फौजने दीवारकी तरह अपनेको सामने कर दिया।

अगरेज जिलाधीशने पूछा—"आखिर, तुम लोग क्या चाहते हो ?"

एक विद्यार्थीने उभरकर कहा—"हम सेक्रेट्रियेट पर अपना झण्डा लगायेंगे।"

"वहाँके लिए यह झण्डा नहीं है, वहाँ यूनियन जैक फहराता है।" हिन्दुस्तानकी गुलामी पर उस जिलाधीशने एक कडवा व्यग किया।

"अब वहाँ यूनियन जैक नहीं फहरा सकता, यह तिरगा ही वहाँ फहरायगा।" विद्यार्थीने कहा।

अगरेज तमतमा उठा—"ऐसा कभी नहीं हो सकता जाओ भाग जाओ।"

"हम तो झण्डा फहराकर ही लौटेंगे।" एक दूसरे विद्यार्थीने कहा।

"हूँ !" अगरेजका अहकार गुर्रा उठा—"तुममे जो झण्डा फहराना चाहता हो, वह आगे आये।"

ग्यारह विद्यार्थी भीडसे बाहर हो, एक साथ आगे बढ-आये, उनका कार्य ही उनका उत्तर था। इन ११ मे सबसे आगे जो विद्यार्थी था,

"तब ठीक है, मैंने पीठपर गोली नहीं खाई।" उसने कहा और हमेशाको आँखें मूँद लीं।

इन शहीदोंकी देहसे जो गोलियाँ निकलीं, वे 'डमडम बुलेट' थीं—अन्तर्राष्ट्रीय विधानके अनुसार इन गोलियोंका प्रयोग युद्धोंमें भी वर्जित है, पर अंग्रेजी शासनके लिए उन दिनों न नियम थे, न पाबन्दियाँ। गोली मारना, जेलमें ठूँस देना, पीटना, घर फूँकना, गाँव उजाड़ देना और जाने क्या-क्या मामूली बात थी।

उन्हींके एक आदमीके शब्दोंमें—"पुलिस और फौजको गाँवोंमें खुलकर खेलनेके लिए छोड़ दिया गया था। नेशनल वारफ्रंटके लीडरकी हैसियतसे अपने जिलेके गाँवोंमें घूमते समय मुझे फौज और पुलिसके अत्याचारों, जनताकी सम्पत्तिकी लूट-खसोट, गाँवोंको जलाने, गिरफ्तारीका भय दिखाकर रुपये ऐंठने और कभी-कभी वसूलीके लिए घोर यन्त्रणाएँ देनेकी भी अनेक रिपोर्टें मिली हैं।

पुलिस-द्वारा लूटी गई दूकानें तथा जलाये गये गाँवके गाँव मैंने अपनी आँखोंसे देखे और मैं मञ्जूर करूँगा कि वे दृश्य मरते समय भी मेरी आँखोंके सामने नाचते रहेंगे। जब मैं एक सभामें सम्मिलित होने जा रहा था, तो मेरी ट्रेन एक स्टेशन पर रुकी। मैंने देखा—एक गोरा एक कुत्तेपर निशाना साध रहा है। यह निशाना चूक गया, क्योंकि कुत्ता बहुत दूर था।

मैंने सोचा—बिहारमें इस गोरेके भाई-बिरादर ज्यादा भाग्यशील हैं, क्योंकि उनके निशाने उन्हें बहुत ही नजदीक मिल जाते हैं। आजकल बिहारमें आदमी और कुत्तेमें बहुत ज्यादा फर्क नहीं रह गया है।" जो बात बिहारके सम्बन्धमें कही गई है, वह सारे देशके सम्बन्धमें भी उतनी ही सच थी।

यह नृशंसता किस सीमा तक बढ़ी हुई थी, इसका एक उदाहरण उसी पटनेकी छातीपर अंगारोंसे खुदा हुआ है।

रूसके दमन-दावानलकी उन लपटोंमें—

सन् १९०५ उन दिनों अपने उत्तराधिकारीको अपना चार्ज देने की तैयारी कर रहा था। रूसकी जनता वहाँके कुशासनसे तंग थी। निरङ्कुश दमनने खुले आन्दोलनका द्वार सदा के लिए बन्द कर दिया था। जनतामें भीतर ही भीतर असन्तोपकी ज्वाला सुलग रही थी। समय पाकर वह कुछ बिखरेसे रूपमें रूसके तम्बोफ सूबेमें भडक उठी। जगह-जगह विद्रोहकी घोषणा कर दी गई। जारका साम्राज्य हिल उठा। इस प्रदेशके शासक लुजेनोवस्कीने शासनकी दर्पमयी निद्रासे चौंककर यह देखा, मदने उसे उकसाया और अभिमानने उसे प्रेरणा दी। दमनकी आँधी और भी प्रबल वेगसे धाँ-धाँ कर उठी।

ओह! अत्याचारके साकार स्तूपसे वे कज्जाक सिपाही जिसे देखते पकड लाते, छुरेसे उसे भून डालते, संगीनोंपर उछालते और चौराहोंपर फेंक देते। जिसे चाहते लूट लेते, जिसका चाहते घर फूँक देते और जब चाहते सुन्दर युवतियोंको पकड लाते और खुलेआम उनका सर्वस्व लूटते। लुजेनोवस्की यह सब सुनता, इसकी तारीफ करता और खुश होता। चारों ओर निर्लज्जता, पैशाचिकता और अराजकताकी तामसी तमिस्रा छाई हुई थी।

प्राणोंका सौदा करनेवाले पागल युवकोंकी गुप्तसमिति इस स्थितिपर विचार करने बैठी। लुजेनोवस्की उनकी आँखोंका काँटा था। दलपतिने गम्भीर स्वरमें कहा—"उस शैतानको शफे हस्तीसे मिटा देना ही उसके इन कारनामोंका सच्चा पुरस्कार है।" ठीक है, पर बिजलीके नंगे तारसे जूझनेका यह नाटक कौन खेले? दलमें एक सन्नाटा छा गया। सभी लोग सिर झुकाये जीवन और मरणकी उस झाँकीका चिन्तन-सा करने

गवर्नर लुजेनोवस्कीने दर्पसे अपना कदम प्लेटफार्म पर रक्खा। दोनो तरफ घूमती ऑखो वाले अगरक्षकोकी दो कतारे थी और उनके बीचमे था दम्भका वह दैत्य, जैसे त्रिशूलके दो छोटे फलकोके बीचका उभरा हुआ बडा फलक।

बाहर जानेका द्वार मेरीकी तरफ था, इसलिए वह उधर मुडा। एक कदम, दो कदम, धडाम! मेरी स्पिरिडोनोवाके माउजरकी पहली गोली लुजेनोवस्कीकी छातीके पार हो गई!

सिपाही सन्न, जैसे अचानक दो रेलगाडियाँ टकरा जायँ। धडाम! धडाम!! धडाम!!! छाती और पेटके तीन गोलियाँ तब तक और पार हो गईं! अब सिपाही सँभले, पर न जाने कब मेरी स्पिरिडोनोवा अपने रिवाल्वरकी गोलीकी तरह उछलकर लुजेनोवस्कीके पास पहुँच गई थी। उसका काम पूरा हो चुका था। पॉचवे नम्बर पर उसकी उगली थी, रिवाल्वरका मुँह उसकी छातीसे लग चुका था, वह आत्माहुतिके लिए तैयार ही थी कि गिरफ्तार हो गई।

पत्थरके उस प्लेटफार्म पर दो मानव पडे थे। मुमूर्षु लुजेनोवस्की और कज्जाक सिपाहियोकी राक्षसी मारसे बेहोश सुकुमारी मेरी स्पिरिडो-नोवा! स्टेशनसे दो प्राणी बाहर ले जाये जा रहे थे—अत्यन्त सावधानी और आदरसे सुकुमारशय्या पर अर्धमृत लुजेनोवस्की और अपमान एव प्रतिहिंसासे पैर पकड़कर जमीन पर घिसटती हुई मेरी स्पिरिडोनोवा, पर आज सुकुमारशय्याके उस अधीश्वरकी स्मृति घृणाके अम्बारसे लदी हुई है और अपमानकी उस अधिष्ठात्री वीर बालाका नाम लिखा हुआ है स्वर्णाक्षरोमे, जाति, धर्म और देशकी सकीर्णताओसे ऊपर बलिवेदीके उस पवित्र महाग्रन्थमे।

लुजेनोवस्की ले जाया गया, सरकारी अस्पतालमे मृतक घोषित होनेके लिए और मेरी स्पिरिडोनोवा पहुँचाई गई शैतानियतको न्याय-परीक्षाका नाम देनेवाली कोतवालीमे, कॉच और काचनकी अग्नि-परीक्षाके लिए। वह

काल-कोठरीमे बन्द थी मारसे अधमरी, पीडासे क्लान्त और किसी भी प्रश्नके अयोग्य, पर उससे पूछे जा रहे थे पचासो प्रश्न ! वह चुप-सी थी—बोल ही न सकती थी। उसका वह मौन अधिकारियोको असह्य हो उठा। उसे नगी करके बूटोसे फुटबालकी तरह उछाला गया, पर इस 'चिकित्सा' से भी वह बोल न पाई, तो दूसरे नुसखेके तौर पर एक पतले कोड़ेसे उसकी खाल उडाई गई, पर यह नुस्खा भी असफल रहा, तो मकर-ध्वजके रूपमे अन्तिम खुराक दी गई। उस बेहोश बालाकी देह जगह-जगह गरम लोहेसे दाग़ कर, नुकीली चिमटीसे नोच दी गई, पर उसकी वाणी न खुली—पुलिसको उससे उसके दलका पता न चला, न चला। एक सुकुमार कुमारीसे शैतानियतका सम्पूर्ण जारशाही साम्राज्य हार गया।

ओफ वह काल-कोठरी, वह हण्टर, वह दाह और वे तडफानेवाले सैकड़ो घाव, पर विधिके विधानकी तरह अटल वह मेरी स्पिरिडोनोवा !

तम्बोफकी फौजी अदालतमे उसका अभियोग आरम्भ हुआ। बडी मुश्किलसे एक दिन उसकी मा उससे मिल पाई। यह मिलन कितना करुण था। मेरीके शरीरपर जगह-जगह पट्टियॉ बॅधी थी। उसकी एक ऑख फोड दी गई थी और उसका शरीर व्रणोका एक समुच्चय मात्र था। माका मातृत्व ऑखोसे बरस पडा, पर मेरी ममताके इस बवण्डरमे भी स्थिर रही। उसने अपनी मासे कहा—"मेरा मरण अत्यन्त आनन्दमय होगा मा ! मेरे इस मरण-महोत्सवमे विषादकी कहीं कोई रेखा है, तो यही कि मै वह पॉचवी गोली न चला पाई।"

खॉसते-खॉसते और खून थूकते-थूकते अदालतमे अपने प्रारम्भिक बयानमे उसने कहा—"जब ज्यादतियॉ यहॉ तक बढ गई कि गरीब किसान पिटते-पिटते पागल होने लगे और शीलवती कन्याएँ अपमानकी लज्जामे आत्महत्याएँ करने लगी, तो मेरी आत्मा मुझे धिक्कार उठी और मैने प्रतिज्ञा की कि मेरे प्राण जायॅ या रहे, लुजेनोवस्की अब ससारमे नही रह सकता !"

पुलिसने उसकी पहचानके लिए एक क्लर्क पेश किया, जो उसके साथ बहुत दिन एक ही दफ्तरमे काम कर चुका था, पर उसने उसे देखकर गहरे आश्चर्यसे कहा—"यह ! यह हरगिज मेरी स्पिरिडोनोवा नही हो सकती !" सचमुच उसकी दशा बहुत ही चिन्तनीय थी—जीवनसे वह क्षण-क्षण दूर हो रही थी, पर अत्यन्त निश्चिन्त और सन्तुष्ट ! अपने अन्तिम वक्तव्यमे जजसे उसने कहा—"अपने सम्बन्धमे भय और आतकसे मै निश्चिन्त हूँ। आपके दण्ड-विधानमे सबसे भयङ्कर दण्ड फॉसी है, पर उससे बहुत अधिक भयङ्कर दण्ड मै भुगत चुकी हूँ। मेरा सन्तोप मेरे साथ है, क्योकि मेरा विश्वास है कि अन्याय-अत्याचारकी इस भयकर निशाके अवसानपर समानता, सुख-शान्ति और स्वतन्त्रताका प्रभात अवश्य आयगा। अपनी जनताके इस सुख-शान्तिमय भविष्यके लिए एक छोटे-से जीवनका उत्सर्ग कर देनेसे बढकर मेरे लिए और क्या सुख हो सकता है ?"

केस बहुत बढिया ढगपर लडा गया। बैरिस्टरने अपनी प्रभावपूर्ण वक्तृतामे कहा—"मेरी स्पिरिडोनोवा दारुण अत्याचारोसे दबी राष्ट्रकी भावनाका साकार रूप है।' जज इस केससे अत्यन्त प्रभावित हुए, पर फाउटेनपेन उनकी थी, उसमे स्याही भरनेका काम जारके हाथमे था। उनकी कलम उनकी अगुलियोमे थी, पर कलाईपर सत्ताका अधिकार था। मेरी स्पिरिडोनोवाको फॉसीकी सजा घोपित की गई। सारे रूसमे इस दण्डाज्ञाका प्रतिवाद हुआ और यह प्रतिवाद फ्रासकी स्वाधीन भूमिमे भी प्रतिध्वनित हुआ। वहॉ के अनेक प्रतिष्ठित पुरुपोने अपने हस्ताक्षरोसे एक प्रतिवाद-पत्र जारके पास भेजकर इस निर्णयके प्रति निन्दा प्रकट की। पहाड पिघला, ज्वालामुखीमे शान्ति-सलिलके कुछ छींटे आ पडे, शासकके दर्प-दीप्त मस्तिष्कमे विवेककी एक रेखा छिटक गई और प्राणदण्ड आजीवन कारावासमे परिणत हुआ। 'आजीवन कारावास' का यह विधान रचते समय जारके मस्तिष्कमे 'आजीवन' का अर्थ कुछ मास ही था, क्योकि मेरी उस समय क्षयके मृत्यु-झूलेपर-झूल रही थी, पर विधिके न जाने किस

विधानके अनुसार वह स्वस्थ हो गई और साइबेरिया भेज दी गई।

ओह साइबेरिया! जारशाहीके कैदियोका कालापानी, पर रूसकी स्वतन्त्रताका तीर्थ, भयङ्कर शीतका घर, पर क्रान्तिकारियोकी ज्वाला-मुखियोका केन्द्र!

मार्गमे स्थान-स्थान पर उसका अपूर्व स्वागत हुआ। जब वह साइ-बेरियाके उस आतक पूर्ण बन्दीगृहमे पहुँची, तो उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उसके स्वागतके लिए निर्वासित क्रान्तिकारी उत्सुक थे और आतक एव पशुताका आश्रय वह बन्दीगृह लाल झण्डियोसे सुसज्जित था। यह बन्दी जीवनके विश्वव्यापी महत्त्व तिकडमकी ही एक झलक थी। साथियोका यह सहवास मेरी स्पिरिडोनोवाके लिए और भी स्वास्थ्यकर सिद्ध हुआ, पर शीघ्र ही वह यहाँसे हटाकर एक दूसरे बन्दीगृहमे भेज दी गई।

यह बन्दीगृह! पैशाचिकताके प्रतिबिम्ब अत्याचारी जारकी प्रतिहिंसा का साकार रूप। जीवनको सन्न कर देनेवाला वह सूना एकान्त, क्रुद्ध राक्षसके खुले जबडेकी तरह भयकर भवन और दया एव मानवतासे शून्य वे जेल-अधिकारी, जैसे कसके रूसी सस्करण! सक्षेपमे रूसी स्वतन्त्रता का मूल्य चुकाने वाली तराजू! जो यहाँ आया, बिक गया, लौटनेवाला यहाँ आयेगा क्यो?

मेरीने इसे चारों ओरसे देखा और सब कुछ समझ लिया। उसके दाह–श्याम ओठो पर मुसकराहटकी एक रेखा खिच गई, जैसे जारके अभाग्य-घनपटलमे बिजली चमक उठी। जेलके उस निर्मम रक्षकने ताडकर उसकी तरफ देखा, जैसे कह रहा हो, यहाँ हास्यका प्रवेश निषिद्ध है पगली, पर उसे क्या पता, यह वह हास्य है, जो जातियोके भाग्यका निर्माण करता है और जो सत्ताके सुदृढ दुर्गोको देखते-देखते खील-खील कर खण्डहर कर देता है।

ओह, काले होठोकी वह मुसकराहट! दमन-दानवके महादुर्गकी डायनामाइट!!

अबिसीनियाके उस सूने शहरमें

सभ्य युगके शैतानी साधनोसे इटलीने अपग अबिसीनियाको परास्त कर दिया। बुद्धिके महास्तूप उस सम्राट् हेल सिलासीको मुसोलिनीके दर्पदीत हुङ्कारो-सी राक्षसी गैस-वर्षाके सामने झुकना पडा। युद्धकी घोषणासे पूर्व उसके सामने कुछ शर्तें रक्खी गई—आजादीके मोलपर सुख-सुविधाके कुछ टुकडे उसके सामने फेके गये, पर उसने घृणाकी अन्धेरी छाया फेककर उनकी चमक फीकी कर दी और वीर सत्याग्रहीकी तरह अभिमानके स्वरमे कडककर कहा—मूर्ख ! अबिसीनियाके सिपाही आजादीकी दीपशिखापर पतगोकी तरह जलकर राख हो जाना जानते है, सरकसके शेरोकी तरह हण्टरोके सपाटेमे कला करना उन्हे नही आता।

"ओ, दीपशिखाके पतगे ! ये देख मेरे मोटर और मैशीनगने !" इटलीका अभिमान गरज उठा, पर अबिसीनियाके चक्करदार बीहड पथोमे टकराकर उसकी यह गर्जना चुप हो गई।

"रास्तोका यह मायाजाल सोलहवी शताब्दीका अभिमान था। आज रणचण्डीका नर्तन साधे हुए मैदानोमे नही होता, दुर्गोंकी दुर्गमताका अजेय अभिमान अब टूट चुका, मृत्यु-सुन्दरी अब आकाशके अमित प्रागणमे, अपने बम भरे विमानोमे अरिके प्राणोका संकलन कर थिरका करती है।" इटलीकी धमनियाँ धमक उठी।

अबिसीनियाके हठीले होठोपर मुसकानकी एक मन्द रेखा छिटक गई, पर गम्भीरताके आँचलमे झाँककर उसके भीतरकी सान्त्वनाने कहा—"मेरे अजेय पर्वतोकी इन घनी कन्दराओमे तेरे बम और विमानोका प्रवेश असम्भव है पागल !"

इटलीका सैन्य-बल गम्भीर हो उठा। उसके मुख-मण्डल पर विह्व-

लताकी कम्पन झलक उठी। जरा सोचकर उसने कहा—"खैर, तेरी कन्दराओंका इलाज भी मेरे पास है।" जहरीले गैसोंकी तरफ उसका संकेत था, पर सम्राट्‌की जेबमें राष्ट्रसंघकी युद्ध-नियमावली पड़ी थी। उसकी लोहेकी जिल्द पर हाथ रखकर सम्राट्‌ने कहा—"राष्ट्रसंघका कोई सदस्य इस हथियारका प्रयोग नहीं कर सकता।"

स्वार्थी साम्राज्योंकी चालभरी चितवनें समर्थनकी संकेतमयी मुद्रामें चमक उठीं। अबिसीनियाका भोला सम्राट् अभिमानसे भर गया। यही उसकी भूल थी और अबिसीनियाके भावी पराजयकी आधार-शिला इसी भूलमें निहित थी। वह नहीं जानता था कि राजनीतिकी दुनियामें सौहार्द्र और शत्रुता निरर्थक शब्द हैं और कानून रबड़की तरह शक्तिशालीकी ओर ही खिंचते हैं।

राष्ट्रसंघकी नियमावली बहुत दिनों जिन्दा रही, पर गैसकी गर्वीली फुहारें फेंकनेवाला इटली विजयोत्सव मनाता रहा और नियमोंके नियन्त्रण-का नारा बुलन्द करनेवाला अबिसीनिया गुलामीकी नई चुभनेवाली बेड़ियोंमें बँध गया। नियम नियमोंके लिए हैं, व्यावहारिकताकी वस्तु है शक्ति! इसे वह भूल गया था और भूलकी यही ह्वेल मछली संतोषके सागरमें तैरनेवाली उसकी स्वतन्त्रताको निगल गई।

दूसरे महायुद्धके फलस्वरूप अबीसीनियाकी ये बेड़ियाँ कट गईं और वह फिरसे स्वतन्त्रताका उपभोग करने लगा, पर यह १९३६ से १९४६ तक की कहानी है। इसी इटली और अबिसीनियाके इतिहासमें १९०४ का भी एक पृष्ठ है, जब अबिसीनियाके नंगे पैर लड़नेवाले योद्धाओंने इटलीके बौखलाये सिपाहियोंको पीटकर अपनी सीमासे बाहर भगा दिया था, जैसे शहरके कुत्ते मोह-मायामें भटककर शहरमें आये हुए जङ्गली गीदड़को उसके कान और दुम नोचकर लौटा देते हैं।

तभी की एक बात है।

युद्ध दो दिनसे बन्द था। अबिसीनियाके सिपाही एक शहरमें डेरा

डाले विश्राम कर रहे थे। सरदार अपने खेमेमें बैठा कुछ सोच रहा था। गुप्तचरने आकर उसे सूचना दी—"इटलीकी फौज अचानक आक्रमणकी भावनासे इधर ही बढी चली आ रही है।" आगे बढनेका अवसर न था, इसी स्थान पर लडनेका अर्थ था, शहरकी बर्बादी। सरदारने कुछ क्षण सोचा। उसका सधा हुआ हाथ उसके कुलिश-कठोर कन्धे पर झूलनेवाली त्रिगुल पर जा पडा। शहरका सारा वातावरण एक मर्मस्पर्शी आवाजसे गूँज उठा। शहर खाली कर देने की आज्ञा हुई। वे वाजिदअली शाहके वंशज न थे कि किला टूटने पर भी भागनेके लिए जरीकी जूतियाँ पहनानेको मुसकराती, इठलाती बाँदी की जरूरत पडती। कुछ ही घडियोंमें शहर सूना हो गया। सरदार अपने खेमेके बाहर खडा था और उसके पास खडी थी उसकी लडकी १५ सालकी सुकुमारी, जैसे चित्रकारीमें चित्रित दृढताका अजेय स्तम्भ। सरदारने भी चलनेके लिए कदम उठाया।

"मैं नहीं भागूँगी पिताजी!"

सरदारने चौंककर देखा, उसकी बेटी लाइना तनी खडी है, जैसे मतवाला गजेन्द्र भन्नभन्न कर बढी आती मेल ट्रेनसे टक्कर लेनेको लाइन पर अडकर खडा हो गया हो! बापका वात्सल्य उमड आया। स्नेहकी बूँदोंसे उसने उत्सर्गकी उग्रताको शान्त करनेका प्रयत्न किया, पर लाइना न झुकी—उसके विचारोंकी आकाशचुम्बी पैनी नोक पर पिताके उपदेशका पानी न ठहरा। देरका समय न था। सरदारने लाइनाके सिर पर हाथ रखा—'बेटी! मेरे देशकी इज्जत तेरे हाथ है। दुश्मनोंको अगर हमारा भेद मिल गया, तो आज अबिसीनियाके मस्तक पर पराजयकी कालिमा पुत जायगी।" लाइना जरा और तन गई। यह अटल हिमालयका मूक प्रतिवाद था। सरदार चला गया।

लाइनाने घरसे निकालकर अबिसीनियाका एक राष्ट्रीय झंडा अपने मकान पर लगा दिया और वहीं बैठकर वह कुछ सोचने लगी। थोडी

देरमे इटलीके सिपाहियोकी हुकारसे सारा शहर गूँज उठा। वे उत्तेजित थे, पर उस राक्षसी उत्तेजनाके उपयोगका कही अवसर ही वहाँ न था।

झण्डेकी फहराननने उनके कप्तानका ध्यान अपनी ओर खेचा, तो वह कुछ चुने हुए सिपाहियोके साथ उधर बढ़ गया। अपने झण्डेकी बल्लीसे कमर लगाये वहाँ लाइना खडी थी। शासनकी टोनमे कप्तानने कहा—"तुम कौन ?"

"अबिसीनियाकी एक बालिका।" लाइनाने धीमे स्वरमे कहा।

"ये सब लोग कहाँ जा छुपे है बेटी ?" नम्रतासे कप्तानने पूछा।

"यह बतानेकी बात नही है कप्तान।" गम्भीरतासे लडकीने कहा।
"यह बात तो तुझे बतानी ही पडेगी लडकी।" कप्तान कडा हो उठा।

यह आनेवाली आपत्तियोकी पूर्व-सूचना थी। लाइनाके होठोपर खेल गई मुसकानकी एक हल्की-सी रेखा। यह कप्तानके चैलेजकी स्वीकृति थी।

"हाँ तो, बताती है या नही शैतान लडकी ?" सेनापतिके स्वरमे कप्तानने कहा।

"अपने देशकी आजादीके लिए अगर मर मिटना शैतानियत है कप्तान, तो फिर बल और वैभवके दम्भ भरे दर्पमे झूमकर किसी गरीबके प्राणोको रौदने निकल पडना ही क्या देवत्व है ?"

लाइनाने शान्त स्वरमे कहा। कप्तानकी मानवता सिहर उठी। उसने लाइनाकी ओर प्यारकी ऑखोसे एकबार देखा, पर शीघ्र ही उसका फौजी दम्भ उमड पडा। उसकी ऑखे जल उठी, होठ फडके, मुट्ठियाँ बंध गईं और उसका दाहिना बूट लाइनाके घुटनोपर जा पड़ा। लाइनाका सिर झण्डेकी बल्लीसे टकरा गया।

"अबिसीनियाके सरदारोकी लडकियाँ कष्टोसे खेलना पत्थरके प्रसूति-घरमे ही सीख लेती है कप्तान।" लाइनाने उसी ठण्डे स्वरसे कहा।

"तो ले, खेल कष्टोसे।" कप्तान आगे बढा और उसने अपने दोनो

दानवी बूट लाइनाके छोटे-छोटे पैरोंपर रखकर उन्हें कुचल दिया, पर लाइना न हिली, न चीखी।

"मेरे हृदयमें जो रहस्य छिपा है, उसे तुम मारे शरीरको इसी तरह कुचलकर भी नहीं पा सकते।" लाइनाने दृढतासे कहा। कप्तानका बल हार कर झल्ला उठा। उसने लाइनाका सिर पकड़ा और उसे पूरे जोरके साथ बल्लीसे टकरा दिया। लाइनाके पैर कप्तानके बूटोंके नीचे कुचलकर खूनसे लथपथ थे। लाइनाके घुटनोंका खून टपककर कप्तानके काले बूटोंको लाल कर रहा था, जैसे मानवताकी अपील दानवताके काले कदमोंमें आ पड़ी हो और लाइनाका सिर बार-बार झण्डेकी बल्ली पर पटका जा रहा था, पर लाइना शान्त थी। बल्लीमें उसका सिर ठुक-से लगता, कप्तान आसुरी अहंकार आँखोंमें भरकर उसकी तरफ देखता—बोल अब तो बतायगी वह बात? और लाइना हँस पड़ती। फिरसे उसका सिर बल्लीमें टकरा दिया जाता।

लाइनाकी वाणी न खुली। कप्तानका अभिमान न पसीजा। वह उसे घसीटकर शहरके उस चौराहेपर ले आया, जहाँ उसके दूसरे साथी इकट्ठा थे। इतने दुश्मनोंके बीच लाइना इकली थी, पर जिसके साथ आत्मा का बल है, वह डरेगा क्यों और उसे डरायेगा कौन? सिंहनी-सी निर्भीक वह लाइना खड़ी थी और कप्तान उसके उरःस्थलसे भेद निकालनेका साधन खोज रहा था। कप्तानकी बेचैनीपर वह हँस पड़ी। कप्तान सुनकर छछून्दर हो गया।

लाइना घुटनोंतक जमीनमें गाड़ दी गई और उसके सुन्दर, पवित्र छोटे-छोटे स्तन काट डाले गये, कप्तानने गरजकर कहा—"अब तो बतायगी बदमाश लड़की?"

"किसी विलासी युवककी वासनाका शिकार होनेवाले स्तनोंको मातृ-भूमिके पवित्र यज्ञमें आहुति कर देनेके लिए मैं तेरी कृतज्ञ हूँ कप्तान!' लाइनाने कहा।

कप्तानका सैनिक-दर्प दलित हो हुंकार उठा। हण्टरोंसे लाइनाकी खाल खिचने लगी। ओह, वह दृश्य! घुटनोंतक जमीनमें गडी हुई लाइना, अर्धनग्न और स्तन-हीन लाइना, हण्टरोंसे पिटती हुई लाइना। सैनिकोंकी उद्दण्ड भीड, लाइनाका जहाँ कोई नहीं और दर्पका वह दानव कप्तान, लाइना विचलित हो उठी। उसकी देह जर्जर हो काँप गई, मन बेकाबू हो चला।

कप्तानकी तेज आँखें इसे भाँप गई। उसने कहा—"तुम यह कष्ट क्यों पा रही हो लाइना? बताओ, वे कहाँ जा छुपे हैं?"

कष्टोंसे काँपती जीभ रहस्यका उद्घाटन करने चली। लाइनाका देश-भक्त हृदय विकल हो उठा। उसने देखा, कम्बख्त जीभ घरका चिराग होकर घर जलाने जा रही है। पिताकी वाणी उसके कानोंमें गूँज उठी—"मेरे देशकी इज्जत तेरे हाथ है लाइना।" उसके शरीरमें बिजली-सी कौंध गई। उसका दायाँ हाथ, उसके कुरतेकी जेबमें जा पडा। एक तेज चाकू अब उसके हाथ में था। कप्तान जबतक चौंके, लाइनाने उसे फुर्तीसे खोला और अपनी पूरी जीभ काटकर कप्तानके सामने फेंक दी।

हण्टर लिये कप्तान सामने खडा था। रक्तरंजित चाकू लाइनाके हाथ मे था और उसके मुँहसे खूनकी धार बह रही थी, पर अब वह हँस रही थी। उसके हास्यमें 'खिल-खिल' का मधुर स्वर नहीं था 'औं 'औं औं' की वीर गर्जना थी। कप्तान काँप गया। गड्ढेसे निकालकर लाइना मरनेके लिए सिपाहियोंके बूटोंमें फेंक दी गई। लाइनाका शरीर कुचल दिया गया, पर विरोधी सेनाके मनपर उसके देशकी वीरताकी एक ऐसी छाप पड गई, जो युद्ध-शास्त्रकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी।

लाइना आज नहीं है, पर अबिसीनियाके उस चौराहेपर खडा उसका ऊँचा स्टैचू आज भी लाइनाके उत्सर्गकी प्रसादी विश्वके युवकोंको बाँट रहा है। उसकी इस प्रसादीमें कप्तानके काले कारनामोंकी याद है, लाइना

की दृढताका वरदान है, कर्तव्यकी भावना है, उत्सर्गकी उज्ज्वलता है, सजीवताका सदेश है, लक्ष्यके लिए—बातके लिए, आनके लिए, मर मिटनेकी प्रेरणा है और इन सबसे बढकर युवकोंके लिए आजादीकी कीमत का ऐलान है। लाइना मरकर भी अमर है और उसका दान विश्वके जीवन-कोषकी बहुमूल्य निधि है।

लाल अंगारोंकी उस मुसकानमें !

[१]

"मै आपकी शरण आया हूँ महाराज ।"

रणथम्भोरके राजा हमीर अपने दरबारमे बैठे अपना राजकाज देख रहे थे कि किसीने पुकारा—"मै आपकी शरण आया हूँ महाराज !"

हमीरने आँखे ऊपर उठाई, तो एक बहादुर मुसलमान उसके सामने । सिर उसका झुका, गला उसका व्यथासे भर्राया ओर मुद्रा उसकी पीडित ।

"कौन हो तुम ?" हमीरने पूछा ।

"महाराज, मै दुखिया हूँ, मेरे प्राण संकटमे है, आपकी शरण आया हूँ !" आगन्तुकने कहा ।

आगन्तुककी पूरी कहानी यो–"मेरा नाम माहमशाह, काम सिपाहीगिरी । बादशाह अलाउद्दीन खिलजीका खादिम । एक मामूली बात पर बादशाह नाराज और मेरे लिए फाँसीका हुक्म । वे घडियाँ नजदीक कि जब फाँसीका फन्दा दम घोटकर मेरी लाशको चील और कुत्तोंके लिए एक स्वादिष्ट नाश्तेकी तरह फेंक दे कि मै जेलसे फरार और अपने प्राणोंकी रक्षाके लिए यो आपकी शरणमे हाजिर–मेरी रक्षा कीजिये महाराज !"

हमीरने गौरसे माहमशाहको देखा । माहम बहुत घबराया हुआ था । "दिल्ली और रणथम्भोरके बीचमे तो राजपूतोंके कई राज्य है, तुम उनमे क्यो नही गये माहम ?" हमीरने गम्भीरतासे पूछा ।

और भी दीन होकर माहमने कहा–"महाराज, मै सबके दरवाजे गया, सबने मुझे सहानुभूति दी, पर कोई शरण न दे सका क्योंकि मै दिल्लीके बादशाह अलाउद्दीन खिलजीका भगोडा हूँ और मुझे शरण देकर कोई उन्हे नाराज करना नही चाहता ।"

हमीरने अपने सलाहकारोंकी ओर देखा और उन्हें अनुत्साहित पाया। उनकी राय थी—"महाराज, माहमशाहकी तलवार आज आपके द्वार शरणार्थी है, पर कल तक वह हमारे खूनकी प्यासी थी। हम उसे अपनी छायामें ले, दिल्लीके तख्तकी लपलपाती क्रोधाग्निको न्यौता क्यों दे ?"

"यह दिल्लीके तख्तकी लपलपाती क्रोधाग्निको न्यौता देनेका सवाल नहीं है सरदारो, यह कर्तव्यका प्रश्न है, आनका प्रश्न है। जब माहम इस द्वारसे निराश लौटेगा, तो स्वर्गमें हमारे पूर्वज क्या सोचेंगे ? क्या उस दिन उन्हें स्वर्गके सुख-साजोंमें कॉटोंकी चुभनका अनुभव न होगा ?" हमीरने आवेगमें पूछा।

धीमे हो सरदारोंने कहा—"महाराज, आपकी बात परम पवित्र है, पर कर्तव्यकी भी तो एक सीमा है।"

"कर्तव्यकी सीमा ?" भडककर हमीरने पूछा—"कर्तव्यकी सीमा है कर्तव्य और कर्तव्यकी सीमा है कर्तव्यका पालन। कर्तव्यके पालनमें सुख मिलेगा या दुःख, जय होगी या पराजय, यह दूकानदारीकी वृत्ति राजपूतोंको शोभा नहीं देती। माहम शरणार्थी है, शरणार्थीकी रक्षा राजपूतका कर्तव्य है। यह कर्तव्य हमें पूरा करना है, फिर इससे दिल्लीका बादशाह नाराज हो या दुनियाका बादशाह !"

सामन्त-सरदार अब महाराजकी भावधारामें अवगाहन कर, बुद्धिसे दूर भावनाके क्षेत्रमें पहुँच गये थे। उनके मुँहसे निकला—"धन्य महाराज !"

हमीरने अपने सिंहासनसे उठ माहमको थपथपाया और छातीसे लगा लिया। हमीर इस समय आसमान थे, तो माहम धरती। दोनोंका यह मिलन देख, रणथम्भोरके सूखे-ठूँठे वृक्षोंमें नई कोपलें फूट आईं।

हमीरने कहा—"माहमशाह, रणथम्भोर अब तुम्हारा ही घर है। आरामसे यहाँ रहो और विश्वास रक्खो कि अब किसीकी हिम्मत नहीं कि तुम्हारी तरफ तिरछी आँखोंसे देखे। कोई कष्ट हो, तो हमें कहना—जाओ।"

[२]

कानों-कान यह उड़ती खबर दिल्लीके बादशाह अलाउद्दीन खिलजी तक पहुँची, तो वह तमतमा उठा—हमीरकी यह हिमाकत कि मेरे चोरको बगलमें ले।

"क्या तुम नहीं जानते हमीर, जो तुमने माहमको यों अपनी छत दी? खैर, मै भूलोंको माफ करना जानता हूँ। कोई बात नहीं—माहमको अपनी देख-रेखमे मेरे सुपुर्द करो और अपने कसूरकी माफी माँगो।" अलाउद्दीनका यह सन्देशा हमीरके पास पहुँचा, तो वह मुसकराया और उसने बादशाहको लिखा—"मैने माहमको शरण दी है, कोई नौकर नहीं रक्खा और अपना सर्वस्व लुटाकर भी शरणागतोंकी रक्षा करना मेरी जातिका संस्कार है। सपनेमे भी उम्मीद न रखिये कि माहमको मै आपके दरवाजे लाऊँगा और जो मुनासिब समझें सो कीजिये।"

जवाब क्या था, एक पलीता था, जिसने खिलजीके बारूदमे आग लगा दी और उसने कुछ दिन बाद ही अपनी फौजोंके साथ रणथम्भोरका किला घेर लिया।

"लड़ाई-झगड़ेसे क्या फायदा हमीर, ला माहमको मुझे सौंप दे।" खिलजीका यह आखिरी सन्देशा था।

"लड़ाईसे मै नहीं डरता और जीवनकी आखिरी घड़ीतक माहमकी रक्षा करूँगा।" हमीरका यह आखिरी उत्तर था।

दूसरे दिन रणदुन्दुभि बज उठी। ऊँची पहाड़ी पर बना रणथम्भोरका किला और उसके चारों ओर फैली शाही फौजें। घमासान लड़ाई, जिसमें एक तरफ शक्तिका दर्प, तो दूसरी तरफ गैरतकी पच। एक तरफ अपने बादशाहके लिए लड़नेवाले फौजी, तो दूसरी तरफ अपनी बातके लिए मर मिटनेवाले सिपाही। एक तरफ भरपूर साधन, तो दूसरी ओर भरपूर आन। लड़ाई क्या—एक बातकी बाजी और यह बाजी,

जिसका निशाना एक आदमीके प्राण और इस एक प्राणके लिए हजारों प्राण, सरसोंके एक दानेकी तरह, हथेली पर।

दोनों तरफके हजारों योद्धा काम आये। बादशाहकी ताकत जितनी छीजती, दिल्ली उसे पूरा कर देती, पर हमीरकी शक्ति-धाराकी जो लहर बह जाती, बह जाती–वह फिर न लौटती। हर टूटती तलवार सौ को निन्नानवे करती और हर गिरता सिपाही हजारको नौ सौ निन्नानवे–व्ययके रास्ते खुले हुए थे, तो आयके बंद। कारूँका खजाना और कुबेरका कोष भी यों कब तक टिक पाता रणथम्भोरकी सैन्य-शक्ति और खाद्य-सामग्री कम पड़ चली !

हमीर उस दिन कुछ सोच रहे थे कि माहमशाह आकर खड़े हो गये। "कहिये शाह साहब, क्या बात है ?" हमीरने उनसे कहा।

"अर्ज यह है कि मेरी वजहसे आपका बहुत नुकसान हो चुका। मैं आपकी मुसीबतोंको और ज्यादा बढ़ाना नहीं चाहता और बादशाहके पास जानेकी इजाजत लेने आपकी खिदमतमें हाजिर हुआ हूँ।" माहमशाहने बहुत ही नम्र स्वरमें कहा।

हमीरने पूरी गम्भीरतासे कहा–"शाह साहब, यह लड़कोंका खेल नहीं, युद्ध है। फिर क्या आप नहीं जानते कि मैं राजपूत हूँ। जो वचन आपको दे चुका हूँ, उसे मरते दम तक निबाहूँगा। इस लड़ाईमें आपकी बहादुरीके चमत्कार देखकर मैं बहुत खुश हूँ। हार-जीत तो बहादुरकी किस्मतके दो सितारे हैं, इनकी फिक्र न कीजिये।'

लड़ाई चलती रही, सामान और सिपाही घटते रहे। एक दिन भण्डारीने खबर दी—"आज खानेका सामान समाप्त है।'

रणथम्भोरके किलेमें एक सभा हुई कि अब क्या हो ? माहमशाहने बहुत खुशामदें कीं, वह बहुत गिड़गिड़ाया कि उसे बादशाहको सौंपकर सुलह कर ली जाय, पर उसके प्रस्तावका समर्थक वहाँ कोई दूसरा न था। सचाई यह है कि हमीर और उसके साथियोंके सामने यह प्रश्न ही न था

कि हम कैसे बचे ? उनकी विचार-दिशा तो केवल यह थी कि अब हम कैसे लड़े ? भावुकताका ऐसा ज्वार विश्वके इतिहासमे शायद ही कही और आया हो !

फैसला हुआ कि कल किलेका द्वार खोल दिया जाय और जमकर युद्ध हो—इस युद्धका स्पष्ट अर्थ था आत्माहुति, सर्वस्व समर्पण। जीतकी कामना सिपाहीको उत्साह देती है, तो विजयकी आशा उसे बल, पर ये कामना और आशाके झूलेपर इधरसे उधर और उधर से इधर झूलनेवाले सिपाही न थे—इन्हें झूलना नही झूमना था, इन्हे कुछ बूझना नही, बस जूझना था। क्या सचमुच ये गीतामे वर्णित निष्काम कर्मयोगके सर्वोत्तम जीवित स्टैच्यू न थे ?

और किलेमे यौवनकी किलकारियाँ भरती, इन स्त्रियोका क्या होगा ? उन्होने फैसला किया कि हम किलेका द्वार खुलनेसे पहले जौहर करेगी !

अब वे सब निश्चिन्त थे, जैसे उन्हे जो करना था, कर चुके थे ! रातको ये सब सो रहे थे, सुबह जल्दी उठनेके लिए और सुबह इन्हे जल्दी उठना था—हमेशाको सोनेके लिए ! ऐसी जीवन्त नीद रातके सितारोने फिर नही देखी, यह वे हमेशा आपसमे अब भी कहा करते है।

पौ फूटी, तो सब जागे ओर पुरुषोने नित्यकर्मोसे निपट, सबसे पहले एक विशाल चिता सजाई। स्त्रियोने पूजन किया, कीर्तन किया। वे अपने-अपने पतियोसे मिली। पुरुषोने उन्हे प्यारसे थपथपाया, उन्होने उनके पैर छुए। ओह, आज वे अपने सर्वश्रेष्ठ शृंगारमे थी, जैसे जीवनकी सर्वोत्तम यात्रा पर आज उन्हे जाना था और यो वे अपनी दर्पदीप्त गतिसे चिताकी ओर चली—जैसे स्वयवरके बाद दुलहने अपने रथकी ओर बढ़ रही हो !

यह लो, वे चढ गई चितापर और बैठ गई पास-पास अपनेको सॅभाले-सवॉरे। कुछने सुना, कुछने कहा—"अच्छा अब स्वर्गमे मिलेगे।" और चिताकी लपटोमे वे घिर गई।

जलती चिताकी उस गोदमें

इधर देवता, उधर राक्षस, एक तरफ शिव, दूसरी तरफ शैतान और बीचमें मनुष्य। मनुष्य एक लचकदार चीज, जो बदल सकती है, इसमें भी और उसमें भी। आजका इन्सान अपने बायें हाथ थोड़ा बढ जाए, तो कल राक्षस और दायें हाथ बढ जाए, तो देवता—प्रकृति और परमात्मा के बीचकी एक अजब कड़ी यह मनुष्य!

राम और कृष्ण, बुद्ध और महावीर, ईसा और मुहम्मद, तुलसी और नानक, रामकृष्ण और गांधी, विवेकानन्द और रामतीर्थ, रैदास और मीरा, विश्वके सब महापुरुषों और सन्तोंने अपने जीवनमें जो चमत्कारी कार्य किये, उनका बाहरी रूप, उनके समयकी परिस्थितियोंके अनुसार कुछ भी क्यों न हो, उनके उपदेशोंकी भाषा संस्कृत हो या अरबी, पाली हो या प्राकृत, हिन्दी हो या गुरुमुखी, उसका उद्देश्य एक है–मनुष्य और राक्षसके बीच दीवार खड़ी करना और मनुष्यको उसके दायें हाथ–देवत्व की ओर बढनेको बढावा देना।

इस दीवार और बढावेके सम्मिलित रूपका ही नाम धर्म है। मनुष्य ने आज गाँव बसा लिये, शहर बना लिये, उसने अपनी एक नई सभ्यता की रचना कर डाली, ठीक है, पर अपने आरम्भमें वह जंगली था और वहाँ एक दिन उसने अपनी नंगी देहको पत्तों और छालोंसे ढककर और फूलों एवं बेलकी लताओंसे सजाकर इस सभ्यताकी नींव रक्खी थी।

आज भी उसके भीतर, भीतरके भी भीतर, वह वृत्ति शेष है और वह इन दीवारोंको फूल-पत्तियों–बाहरी आचार-विचारोंसे सजाने लगता है। यह सजावट उसकी आँखोंमें प्यारकी, स्नेहकी, ममताकी एक रेखा खींचती है और यही रेखा आगे बढकर पूजाकी भावनामें बदल जाती है और यों

मनुष्य उन दीवारोके उद्देश्यको भूलकर उन्हे पूजने लगता है। पूजने लगता है कि उन्हीमे लीन रहता है और अपने दाये हाथ–देवत्वकी ओर बढनेसे रुक जाता है।

यह अज्ञानका रूप है और अज्ञानके अधिष्ठाता है राक्षस। वे भूल-भुलैया दे, इस दीवारमे आ बसते है और इस तरह मनुष्य उनके माया-जालसे निकलते-निकलते फिर उसीमे रम जाता है। प्रकृतिका अद्भुत विधान है कि नये सुधारक आते है और उसे फिर सावधान करते है।

उन्नीसवी शताब्दीके मध्यमे ईरानमे भ्रातृत्व और समानताका सस्थापक इस्लाम ही राज्य-धर्म था, पर सामाजिक जीवनकी एक अजीब दशा थी। राजा और उसके सामन्त जनताका शोषण करते, उसे चूसते और इस तरह लाखो इन्सानोको इन्सानियतका ककाल बनाकर थोडे-से बडे आदमियोके घरमे रोशनी होती और खुशबूदार पुलाव पकते।

स्त्रियोकी–मनुष्यको जन्म देकर पालनेवाली मातृजाति की–दशा गुलामो से भी बदतर थी। समाजमे, परिवारमे, जीवनमे, न उसका कोई अधिकार था, न मॉग। आम जनताके लोग भूखे थे, कगाल थे, पर उनकी तरफ किसी का ध्यान नही था और सचाई तो यह है कि उन्हे स्वय भी अपनी तरफ ध्यान देनेका अधिकार नही था। शिक्षापर कुछ ऊँचे खानदानोका ही अधिकार था–स्त्रियो और गरीबोके लिए पढना असम्भव था–असम्भव क्या, एक गुनाह! यो सारे समाजपर जडता छाई हुई थी और इस क्रूर जडताको ही धर्म कहा जा रहा था।

समयने एक सुधारकको जन्म दिया। उनका नाम था–मुहम्मद अली बाब! बाब का अर्थ है द्वार—वे कहते, मै एक नये प्रकाशका द्वार हूँ। यह नया प्रकाश था–सब धर्मोकी मूलमे एकता, स्त्री-पुरुषकी समानता, शिक्षा और सम्पत्तिपर नर-नारीका समान अधिकार!

धर्मान्धता बुराई है, पर जब शासक ही धर्मरक्षाका ठेकेदार हो, तो यह बुराई विष-बुझी बरछीसे भी अधिक भयानक हो जाती है। ईरानका

शाह बाबको क्यो सहता ? धर्मान्ध राजसत्ताका नारा है–'अपनी बातसे हटो या धरतीसे !' सुधारकके भाग्यका भरोसा है जेल और वैभव है फॉसीका तख्ता । बाबने जाने कितनी जेलोका पानी पिया और अन्तमे शहर तुबरेजमे उसे फॉसी दे दी गई । उसे अपनी बात समाजसे कहने को कुल सात साल मिले, पर आज ससारमे उनके नामपर सिर झुकाने वालोकी तादाद २० लाखसे ऊपर है ।

इन्ही सात वर्षोके बीच एक दिन !

ईरानकी शाही मस्जिद, जुमेकी नमाज, ऑगनमे एक तरफ सजे-धजे मौलवी और रईसजादे, दूसरी तरफ गरीब नागरिक, फटे हाल और दबे बुचे-से, सबसे आगे इमाम और सबका मुँह मस्जिदकी तरफ–सब सिजदेमे ।

सिजदेसे सब उठे, तो हजरत इमामके पास एक काला बुरका, जमीन पर पडा बुरकेका कपडा या कपडेका खाली बुरका नही, टुकेसे घुटनो और उभरे-से कन्धो वाले जीवित मनुष्यको अपनेमे लिये एक काला बुरका !

सबकी ऑखे उधर, फटीकी फटी ऑखे और सब विस्मय-विमुग्ध ! तभी उस बुरकेमे फूट पडे बुलबुलसे बोल–मीठे, पर पैने, जैसे शहदसे सनी कटार !

बुरकेके बोल कुछ इस तरह थे–"आप लोग अभी नमाज पढ रहे थे, पर ससार भरमे फैले इन्सान और इन्सानके बीच एकताकी, भाई-चारेकी शपथ ही तो नमाज है ! आपने खुदाके सामने सिजदे किये, पर खुदा कहॉ है ? वह किताबोमे नही है, किताबे उसे पानेकी राह बताती है, पर उनमे खुदा नही है । खुदा हमारे भीतर है, इसलिए ससार के मनुष्योकी सेवा ही खुदाको पानेकी सच्ची राह है । आज धर्म-स्थानोपर स्वार्थियोका कब्जा है, यहॉ हम शैतानको पा सकते है, खुदाको नही !

मेरी बात झूठ है, तो मै पूछती हूँ कि खुदाके इस पवित्र राज्यमे ये

एक तरफ गरीब क्यो है ? ये एक तरफ अमीर क्यों है ? ये एक तरफ चूसने वाले क्यों है ? ये एक तरफ चुसनेवाले क्यो है ?

क्या कहते हो तुम कि औरतोंमें आत्मा नहीं होती ? और क्या कहते हो तुम कि औरते सिर्फ भोगविलासकी चीजे है ? गलत, धोखा, बेईमानी और सरासर झूठ, खुदाकी निगाहोंमें, मजहबके सायेमें औरत और मर्द बराबर है–उनमें कोई फर्क नहीं, उनके हक्कमें कोई फर्क नहीं।"

बोल बन्द हुए, तो बुरका हिला और दो कमलनाल-सी कोमल भुजाओं ने अपनेको ढके उस बुरकेको फाडकर तार-तार कर दिया। अब सबके सामने एक जवान ओरत, जिसका रग चादनी-सा और रूप गुलाब-सा, जिसके बोल बुलबुल-से, स्थिरता पहाड-सी ओर गरमी ज्वालामुखीकी तरह, पत्थरकी अहिल्या-से सब जहाँ-के-तहाँ खडे रह गये, सन्न भी और सन्नाटे मे भी। सबको ऐसा लगा कि ईरानमें एक भयकर भूकम्प उमड आया है।

यह तरुणी ताहिरा थी। अपने बूढे बापकी इकलोती बेटी, अपने स्नेही पतिकी पत्नी, अपने गुरुकी शिष्या, जिसने नये प्रकाशसे उसे घरके घुटे धुएँसे निकालकर क्रान्तिके प्रचण्ड चौराहे पर खडा कर दिया था।

मस्जिदकी यह घटना एक आधीकी तरह नये-नये रूपोमे ईरानके घर-घर फैल गई। सबके सामने एक ही प्रश्न था–ओह, अब क्या होगा ? यह कोई मामूली बात न थी–एक जवान औरत, खुले मुँह, मस्जिदके बीच और नमाजके वक्त।

जिस घरमे ताहिरा लाडो पली थी, वहीं उसपर पहली चोट पडी–उसे लोहेकी मोटी जजीरोंमे बाँधकर, एक अँधेरे कमरेमे बद कर दिया गया। उसकी कोमल देहपर कोडे पडे, वह भूखी रही, उसे बदमाश बताया गया, पर वह अपनी बातसे न हटी, न हटी।'

एक दिन इसी रूपमे उसका पति उससे मिला। वह उसे देखकर रो पडा, तो ताहिराने कहा–"रोते क्यो हो ? यह सब तो मेरा इम्तहान है। घबराओ मत, मै इसमे पास हूँगी।'

शाहने एक दिन उसे अपने दरबारमे बुलाया। वह उसके व्यक्तित्व का प्रशसक था। मीठे-मीठे उसने कहा—"तू पागल न बन ताहिरा, अपनी यह हठ छोड दे।" जवाब सुननेको दरबारके लोगोकी ऑखे फैल गई, पर उनके कानोमे पडा—"यह पागलपन नही है शाह! यह तो एक क्रान्ति है। मै रहूँ या मिट जाऊँ, गरीबी और अमीरी, औरत और मर्द, अत्याचार और दीनताका यह सघर्ष उस दिनतक नही रुकेगा, जबतक इन्सान और इन्सानके बीच इस ससारमे समानता कायम न हो जाय।"

लोग गुस्सेसे मसमसा उठे। फिर भी सयमसे शाहने कहा—"जानती है इस जिदका नतीजा?"

"कोडे, कैद और फॉसी, खब जानती हूँ शाह!" ताहिराने मुसकराकर कहा, तो सबके मनका क्रोध कुछ और पैना हो गया!

एक दिन शहरमे ताहिराका जुलूस निकाला गया और सबसे कहा गया कि वे जुलूसको देखे। ससारके इतिहासका यह एक अजीब जुलूस था—सुनयना, सुवयना, सुमुखी, सुकण्ठा, सुकुमारी ताहिरा एक खच्चरकी पूँछसे पैरोके द्वारा बँधी थी और उसका धड सडक पर घिसटता जा रहा था। कुछ लोग तडफ रहे थे, मचमचा रहे थे, पर बोल न सकते थे और कुछ लोग खुश थे, तालियाँ बजा रहे थे!

शाह भी यह जुलूस देखने आया और देखकर रो पडा। ताहिराने, लहूलुहान ताहिराने उससे कहा—रोते हो शाह, क्यो?" और वह हँस पडी—ओह यह हँसी, प्रलयकी बिजलियोसे भी अधिक वेधक। शाह जल उठा—पता नही क्रोधसे या अपनी बेबसी से। उसने हुक्म दिया—"झोंक दो इसे आगमे।"

ओर ताहिरा, जीती जागती ताहिरा चौराहे पर चिता सजाकर जला दी गई। चिताकी लपटोमेसे भी लोगोने उसकी मुसकराहट देखी। यह मुसकराहट ईरानके शाहकी धन-सम्पदा पर एक लानत थी, जिसे चाहती, तो ताहिरा एक ही मुसकराहटमे पा लेती!

"छोड दो ताहिराको !" शाहका हुक्म लिये सिपाही दौडा आया, पर तब वहाँ ताहिरा नही, उसकी जली-झुलसी लाश ही बाकी थी। वह उस समय बोल सकती, तो शायद कहती—"मुझे तुम्हारी मेहरबानियोकी जरूरत नही, ज्वालाकी ये लपटे मुझे मुबारक !"

ग्रीसके उन तूफ़ानी दिनोंमें

शक्ति सेवाका सम्बल है। शक्तिशालीका वास्तविक अर्थ है सेवक। जितनी शक्ति उतनी सेवा। जिसमे शक्ति नहीं, वह सेवा क्या करेगा, पर शक्ति एक पैनी धारकी तलवार है। उसका मुँह सेवाकी ओर ही रहे, तो वह दैवी वरदान है और वह गर्वकी ओर हो जाय, तो अभिशाप बन-कर सर्वनाशका ताण्डव करने लगती है।

शक्तिका सदुपयोग सद्भावनाका जनक है और दुरुपयोग असन्तोष का। यह असन्तोष एक निराकार डायनामाइट है, जो शक्तिके पर्वतोको खील-खीलकर बिखरा देता है। शक्ति, उसका दुरुपयोग, असन्तोषका जन्म और उथल-पुथल विश्वके सम्पूर्ण विप्लवोका यही इतिहास है।

ग्रीसमे भी असन्तोषकी यह ज्वाला भीतर ही भीतर बरसोसे सुलग रही थी। तोप, बम और फौजोका अभिमानी शासक उसे देख ही न पाता—देखकर भी उसके परुष होठो पर खेल जाती उपेक्षाकी मुसकान, पर इतिहास साक्षी है, दर्पसे दीप्त उपेक्षाकी यह मुसकान-रेखा सदा ही विपत्तिकी पूर्व सूचना सिद्ध हुई है।

अवसर आया, असन्तोष भडक उठा, क्रान्तिकी अगारमयी लाल लपटे सारे देशमे धू-धूकर जल उठी। वे १९३५ के तूफानी दिन थे। असन्तोषकी गहराईमे कुछ कमी थी, साधनोका सगठन कुछ ठीक न हुआ था, इसलिए क्रान्ति उठी, भड़की और विफलताके महासागरमे भावी सफलताकी खोज करने चली गई, पर वह मरकर भी अमर हुई और उसका अस्थिपजर मैसेडोनियाके जगलोमे पडा-पडा विश्वकी कायरता और मूर्खता-पूर्ण सन्तोषको वीरता, प्रवृत्ति और आत्म-त्यागका सन्देश देता रहा।

उसकी उम्र अभी २१ साल थी—यौवनकी मस्ती, उसकी दैहिक सुन्दरतामें मिलकर खिल उठी थी और वह चाहती, तो किसी सुन्दर युवाकी अर्धांगिनी बन, ऐश कर सकती थी, पर उसका मन क्रान्तिपथका अनुधावी था, स्वातन्त्र्य-भावना उसने माँके दूधके साथ पी थी और विद्रोह उसे विरासतमें मिला था।

उसका नाम हेलेना मेट्रोपोलेस था और वह विश्व-विख्यात कवि बायरनकी वंशधर थी। उसकी वीर माता सर्वियन रेडक्रासकी ओरसे काम करते हुए बलि हो गई थी और उसका बाप सर्वियनोंकी ओरसे लड़ते हुए शहीद हुआ था। मृत्युकी ममतामयी गोदमें सदाके लिए आँखें मूँदनेसे पहले उन्होंने अपनी प्यारी हेलेनाके नाम पत्रमें लिखा था—"सुख और दुःख तो मनके विकार मात्र हैं। जीवनमें वे आते-जाते ही रहेंगे, पर तुम सदा न्याय और स्वतन्त्रताका आदर्श अपने सामने रखना।"

बहादुर बाप और सेवाव्रती जननीकी इस वीर पुत्रीने पिताके इस आदेशका सदा पालन किया। प्रारम्भसे ही उसकी प्रवृत्ति विद्रोहात्मक थी। १८ वर्षकी वयमें वह तलवारकी धारपर खेलना और खिलाना सीख गई थी और इस क्रान्तिसे पूर्व वह हवाई जहाज चलानेकी शिक्षा ले रही थी।

ग्रीसके क्रान्तिदलकी वह प्रमुख सदस्या थी। दलने इसके आकर्षण, वीरता और संगठन-शक्तिसे प्रभावित होकर ही क्रान्तिकारी महिलाओंकी सैनिक टुकड़ीके संगठनका गुरुतर कार्य इसे सौंपा था और राज्यक्रान्तिके आरम्भमें ही इस दलका सञ्चालक पद इस वीरबालाको दिया गया था। इसका खिंचाव गजबका था। वह किसी होनहार लड़कीको देखती, उससे बातें करती और दूसरे ही दिन दलवाले देखते कि एक नई सदस्याका दीक्षा-संस्कार हो रहा है। भीतरके असन्तोषको भड़का देनेमें इसे कमाल हासिल था और इस कमालका ही यह फल था कि इसकी स्वयंसेविकाओंने

दलके युवकोंको ही चक्करमे नहीं डाला, समर्थ अधिकारियोंको भी स्तब्ध कर दिया था ।

हेलेना राज्य-सत्ताकी आँखोमे काँटा थी । इसकी वीरता, दूरदर्शिता और चकाचौंध मचा देनेवाली स्फुरणाने उन्हे चक्करमे डाल दिया था । उन्होंने उस दिन हेलेनाको जीवित या मृत गिरफ्तार करने पर एक बडे पुरस्कारकी घोषणा की थी, पर उसने अपने सैनिकोकी सहायतासे स्टेमा नदीका विख्यात पुल उडाकर उसी दिन सरकारी फौजको किंकर्तव्यविमूढ-सा बना दिया था और देखनेवालोंने देखा, क्रान्तिके सफल होनेकी सम्भावना उस दिन बहुत बढ गई थी ।

चुलबुलापन और अट्टहास उसकी अपनी चीजें थीं । वह एक जाल बिछाती और उसके दुश्मन जब उसमे फँस जाते, तो वह जोरसे हँस पडती । चारो ओर उसका यह भयङ्कर अट्टहास गूँज उठता और दुश्मनो पर धूल-सी पड जाती । विरोधी फौजका कमाण्डर उससे परेशान था । ऐसी थी उसकी बगावत ।

समय-समय पर उसने सरकारी फौजसे घमासान लडाइयाँ लडी थीं । उस दिन भी ऐसा ही दिन था । वह शाही फौजके छक्के छुडा रही थी, पर उसके सैनिक पीछे छूट गये और वह अकेली शत्रुओंके दलमे घिर गई । उसने देखा—अब वह अधिक देर तक वहाँ नहीं ठहर सकती । अपमानका एक नक्शा उसकी आँखोमे घूम गया । गिरफ्तारी, शत्रुओंके न्यायालयमे नीचा सिर, न्यायाधीशकी अपमान-जनक धमकियाँ, छिछोरे सिपाहियोंके व्यग, कोड़ोंकी सजा और फॉसी !

वह कॉप गई । उसके अन्तस्थलमे उसके वीर पिताकी वह वसीयत चमक उठी—'न्याय और स्वतन्त्रताका आदर्श सदा सामने रखना ।' उसका मुख-मण्डल आत्माकी ज्योतिसे प्रदीप्त हो उठा । देखते-देखते उसने खजर निकाला, हवामे उसे चमचमाया, हँसकर उसे एकबार चूमा और फुर्तीसे अपनी छातीके पार कर दिया ।

सधा हुआ उसका दाहिना हाथ मूठ पर था, खूनकी धारा बह रही थी, चेहरे पर दृढ निश्चयका ओज था, ओठोंपर मुसकान थी और उसकी देह समर-भूमिमें पडी लोट रही थी। मरण-महोत्सवकी वह शान देखकर दुश्मन चकित रह गये। बन्दूकके घोडोंपर पडी उँगलियाँ वहीं रुक गईं, तलवारकी मूठोंपर जमी कलाइयाँ ढीली पड गईं। वीरताका सारा वातावरण कुछ क्षणके लिए करुणाकी अमन्द मन्दाकिनीमें तैर चला।

उफ, उसके जीवनका सदा साथी वह खंजर! यह महाकवि बायरनका खंजर था—उसकी कविता-सा पैना और उसकी कला-सा चमकदार, देखनेमें सुन्दर और व्यवहारमें मर्मभेदी। हेलेनाको यह पवित्र परम्पराके रूपमें प्राप्त हुआ था।

व्यक्तिगत स्वार्थोंके लिए अपना ईमान और देशकी इज्जतका सौदा करनेवाले टोडी-विभीषण कहाँ नहीं हैं? क्रान्ति विफल हो गई, इसलिए हेलेना अब केवल एक विद्रोहिणी। उसकी लाश जंगलके एक कोनेमें अपमानपूर्वक फेंक दी गई। यदी क्रान्ति सफल होती, तो जगह-जगह हेलेनाके स्टैचू खडे किये जाते और ग्रीसके सारे उपवन अपनी सुमन-सम्पत्ति उसके शवपर बखेर, कृतार्थ होते!

मानवताके इतिहासमें जय और पराजयका कोई महत्त्व नहीं। ये दोनों एक स्थिति-विशेषके नाम-मात्र हैं, इसलिए इसमें सन्देह नहीं कि पराजित होकर भी वीरताके इतिहासमें हेलेनाका नाम अमर है।

ओह, स्फुरणामयी, अंगारमयी, विद्रोहमयी वह हेलेना!

स्वतन्त्रता और संहारके उन अद्भुत क्षणोंमें

[१]

देशके लिए फाँसी पानेवालोंकी हमारे यहाँ कमी नही और न उन्हीं की, जिन्होंने खुली आँखों और खुली छातियों देशके लिए गोलियाँ खाईं, पर वे तो जीवित शहीद थे। उनकी सारी जिन्दगी एक शहीदकी जिन्दगी थी। वे उनमे न थे, जो मरकर शहीद होते है, वे उनमे थे, जो जीते-जी शहीद होते है—शहीद होकर भी जीते है।

हमारे राष्ट्रके उन शहीदोंका शत-शत अभिनन्दन, जो हँसते-हँसते जीवनके मोहको जीतकर फाँसी चढ गये और गोलियाँ पी गये, पर उनकी मौत उनके अधीन न थी। उनकी बलिहारी कि उन्होंने मृत्युको मित्र बनाया, उसके भयको उन्होंने जीत लिया, आत्मसात् कर लिया, पर जिनकी बात मै कह रहा हूँ, वे निराले-ही शहीद थे। मृत्यु इनकी मित्र नही थी, दासी थी। वह उन्हे देखती रही, पर पास न आ सकी और जब उन्होंने चाहा कि वह आये, तो वह झिझकी, पर रुक न सकी।

वे मृत्युजय शहीद सरदार अजीतसिह थे, १५ अगस्त—भारतकी स्वत त्रताका जन्मदिन, जिनकी यादमे हर साल श्रद्धाके फूल चढाता है।

उनके जीवनकी कहानी बहुत लम्बी है। वह इतनी विषम है कि कही उसमे टीले, तो कही उसमे खड्डे। यह कहानी कभी फिर सुनाऊँगा, आज तो उनकी मृत्युविजयका पुण्य परायण करके ही आइये, पवित्र हो ले।

अपनी उठती जवानीमे वे भारतसे बाहर चले गये और वहाँ भारत की स्वतत्रताके लिए जो जब बन पड़ा और जो जब सूझा, करते रहे। अँग्रेज उनसे परेशान थे, घबराते थे और भारतकी ओर मुँह करके उनके खड़े होनेसे भी बेचैन हो उठते थे।

पिछली लडाईके आरम्भमे हिटलरने एक बार तो अंग्रेजोंको हिला दिया कि अब गिरे, अब गिरे, पर अजेय लेनिनग्राडने हिटलरकी नींव उखाड दी और अंग्रेज-अमरीका मिलकर उभर चले। उन्हीं दिनों १९४३ मे अमरीकी रक्षा पुलिसने सरदार अजीतसिंहको इटलीमे गिरफ्तार किया और अंग्रेजोंको सौंप दिया। वे जर्मनीके नजरबन्दी कैम्पमे रक्खे गये, जहाँ अपने खर्चपर भी वे दवा और पूरी खुराक न ले पाये।

कैम्पसे वे अंधेरी कालकोठरीमे बन्द कर दिये गये। दुनियाने समझ लिया कि सरदार अजीतसिंह अब कभी इस कोठरीके बाहरका आकाश न देखेंगे और देखेंगे भी तो उस दिन, जब गोली उनका स्वागत करनेको तैयार होगी!

उनकी बीमारी बढती जा रही थी और भारतमे उनके सबंधकी चर्चा भी। अंग्रेज राजनीतिज्ञोंने बीचकी राह खोज निकाली और सरदार साहबको कालकोठरीसे निकालकर टी. बी. के बीमारोंमे रख दिया। चारों ओर टी. बी. ही टी. बी. और उनके कमजोर फेफडे! बस आज-कल-परसों, दोनोंमे दोस्ती हो ही जायगी। गोली भी बचेगी और गाली भी न मिलेगी। दुनिया सुनेगी—सरदार अजीतसिंह टी. बी. मे मर गये।

भारतके इस महान् सपूतके साथ सैनिक क्रूरसे भी क्रूर व्यवहार कर रहे थे, पर उनकी इच्छा-शक्ति उन्हे बचा रही थी। फिर भी उनकी देह लोहा न थी कि चोट पडती और उन पर कुछ असर ही न होता—उन्हे दमेके दौरे पडने लगे। वे घंटों बेहोश रहते और आँखे फटी रह जातीं, वे कराहते रहते, पर उनकी कोई खोज-खबर न लेता।

उनके रक्षकोंकी सबसे बडी जिम्मेदारी उन्हे बिना किसी हथियारके मार डालना ही तो थी! उन्होंने बादमे अनेक पत्रोंमे लिखा था—" फौज मेरी मृत्युका लक्ष्य लिये चल रही थी।"

[२]

युग बदला, लडाईका पासा अंग्रेजोंके हाथ आया, पर उन हाथों,

जो कमजोरीसे कॉप रहे थे। भारतमे अन्तरिम सरकार बनी और पडित जवाहरलाल नेहरू प्रधानमत्रीके पदपर बैठे।

देशके इस बुजुर्ग सरदारको देखनेकी आवाज कोने-कोनेमे उठ खडी हुई। पडित नेहरूकी दृढ़ताने अपना काम किया और सरदार अजीतसिह दिसम्बर १९४६ मे लदन लाये गये। वहॉ उनका जो स्वागत-सत्कार हुआ, उसने उन्हे ताजगी दी और तब ७ मार्च १९४७ को वे कराची और एक सप्ताह बाद दिल्ली पहुॅचे। यहॉ उन्होने देशके औद्योगीकरणके सम्बन्धमे प्रमुख नेताओसे सलाह की और विदेशी विशेषज्ञोकी सहायता लेनेका परामर्श दिया।

९ अप्रैलको वे लाहौर पहुॅचे। वहॉकी राजनैतिक स्थिति बहुत गभीर थी, फिर भी सभी राजनैतिक दलोने उनके स्वागतसमारोहमे हाथ बॅटाया। गरमी उनके लिए असह्य थी, इसलिए वे डलहौजी भेज दिये गये। यहॉ उनका स्वास्थ्य धीरे-धीरे सम्हलने लगा।

[३]

तीसरी जून सन् १९४७, भारतकी स्वतन्त्रता और भारतका बटवारा, एक साथ घोषित किये गये। रेडियो पर पडित नेहरू, मि० जिन्ना, सरदार बलदेवसिह और लार्ड माउटबैटनने अपने सन्देश स्वय सुनाये।

सरदार अजीतसिहने रेडियो सुना, तो वे धकसे रह गये। उन्हे बहुत गहरा धक्का लगा। उन्होने अपनोसे साफ-साफ कहा—"मेरे लिए यह असम्भव है कि मै अपनी ऑखो भारतको खड-खड होते देखूॅ।"

देशमे १५ अगस्तको स्वतन्त्रता-महोत्सवकी तैयारी हो रही थी और सरदार अजीतसिह बेचैन थे। कई दिन पहले उन्होने एक दिन अपनी पत्नी और दूसरे लोगोसे कहा—"मै यह पसन्द करता हूॅ कि १५ अगस्त को स्वतन्त्रताकी घोषणा अपने कानो सुन लूॅ और इस दुनियासे चला जाऊॅ। इस तरह मै अपनी जिन्दगीका वह मकसद भी अपनी ऑखो पूरा होते देख लूॅगा और आनेवाली बुराईको देखनेसे भी बच जाऊॅगा।"

उनकी बात सबने सुनी, पर किसीपर भी इसका असर न हुआ, क्योंकि उनका स्वास्थ्य बराबर सुधर रहा था।

यह है १५ अगस्त १६४७ :

देश स्वतन्त्र हुआ, अंग्रेजोंका शासन खत्म यों सरदार साहबका स्वप्न पूर्ण और उनके जीवनका यह महान् दिन। सचमुच वे उस दिन बहुत खुश थे। उन्होंने रोशनी की, मिठाई बॉटी।

रेडियोपर अपने कानो भारतके स्वतन्त्र होनेकी घोषणा सुनी, सोचते रहे। उन्हे छोटा-सा दिलका दौरा पडा, पर उन्होंने अपनेको सम्भाल लिया और ठीक समय सोने चले गये।

सवेरे कोई ४॥ बजे उन्होंने अपनी पत्नी और अपने मेजबानको जगाया। देखनेमे वे खुश और स्वस्थ थे, पर उन्होंने कहा—"मै अपना विदाई-सन्देश लिखाना चाहता हूँ, क्योंकि अब मै इस ससारको छोड रहा हूँ।"

उनकी बात निश्चित स्वरमे कही गई थी, पर किसीको उसपर विश्वास न था, फिर भी डाक्टरको बुलाया गया। डाक्टरने उनका पूरी तरह मुआ-यना किया और कहा—"सब कुछ एकदम ठीक है।"

उन्होंने भी डाक्टरकी बात सुनी और मुसकरा दिये। आह, विश्वके इतिहासकी यह अद्‌भुत मुसकराहट! उन्होंने कहा—"डाक्टरका विश्वास मत करो और मेरा सन्देश लिख लो। ससार भरमे मेरे मित्र है। उनसे इस समय मै कुछ कह जाना चाहता हूँ। मै उनसे बिना कुछ कहे ही चला गया, तो वे शिकायत करेगे और उन्हे यह मालूम हुआ कि तुमने मेरी बात नही लिखी, तो वे तुमसे नाराज होंगे।'

उनकी बात टालनेकी हिम्मत किसमे थी—उनकी बात टालना ही कौन चाहता था, पर डाक्टरने कहा—"विदाई-सन्देश लिखनेसे इनका यह वहम कि मै मर रहा हूँ एकदम पक्का हो जायगा और उसमे इनका हार्टफेल हो सकता है।"

डाक्टरकी बात सबके मन भाई और उनका आग्रह बहानोंमे बहलाया गया—उन्होंने भी जिद् न की। सबने इसे उनके वहमका शमन समझा। लम्बे कौचपर वे बैठे रहे, पैर पृथ्वीपर टिकाये। मुद्रा गम्भीर, गहरे चिन्तन मे डूबे। अचानक उन्होंने पैर ऊपर फैला लिये और कमर तकियेसे टिका दी।

इशारेसे सरदारनीको उन्होंने अपने पास बुलाया। वह उनके सिर-हाने आकर खडी हो गई। सरदार बोले—"मैने तुमसे शादी की थी और मेरा फर्ज था कि मै तुम्हे आराम पहुँचाऊँ, तुम्हारी सेवा करूँ, पर तुम्हे मालूम है कि मै एक बडे काममे, हम सबकी माँ भारत माताकी सेवामे लग गया, उसीमे जिन्दगी गुजार दी। फिर भी मै महसूस करता हूँ कि तुम्हारे बारेमे मै अपना फर्ज पूरा नही कर सका और मेरी वजहसे तुम्हे बहुत तकलीफे उठानी पडी। अब यह मौका आया था कि तुम्हारी कुछ सेवा करता, पर जो कुछ होनेवाला है, उसे देखना मेरे बसका नही, इसलिए मै जा रहा हूँ। तुम्हारे सामने मै कसूरवार हूँ, पर तुम मुझे सच्चे दिलसे माफ कर देना।"

और पहले इसके कि सरदारनी कुछ कहे, उन्होंने झुककर दोनो हाथो से उसके दोनो पैर छू लिये। अब वे पूरे अपने कौचपर थे कि पैर फैले हुए और तकियेके सहारे बैठे—अधलेटे।

एक-दो मिनिट वे योही रहे और तब उन्होंने पूरे जोरसे पुकारा जय हिन्द। आवाज कमरेमे गूँजी कि एक लम्बा साँस और बस यही था उनका अन्तिम साँस।

रोमकी उस अँधेरी दुनियामें

कभी आगे और कभी पीछे। सुबह इधर और शाम उधर। जय और पराजयके अन्तरका सन्तुलन करके परिस्थितियोंसे आँख-मिचौनी खेलना, राजनैतिक जादूगरोंके पैतरे हैं। वीर बढ़ता है, हटता नहीं। हारा करते हैं, नक्शोंके आधार पर शोणितकी प्याससे उन्मत्त, रणभूमिसे दूर बैठे युद्धका सचालन करनेवाले कमाण्डर। जो जान हथेली पर लिये, शहीदोंका लक्ष्य साधे हृदयके सम्पूर्ण अरमानोंकी तन्मयताके नशेमें घरसे निकला है, विश्व भरमें मछलीकी आँख ही देखनेवाले अर्जुनकी तरह, अपने ध्येयके अतिरिक्त और कुछ जिसे दीखता ही नहीं, वह हारेगा क्या? वीरताके विश्वकोपमें हारका अध्याय ही नहीं है।

मिटना ही जिसकी साध है, उसकी पराजय कैसी? उसके लिए विषाद कहाँ, श्रान्ति कहाँ? विश्वकी शैतानियाँ अपनी सम्पूर्ण शक्तिके साथ आयें, गरजें, उसे क्या भय? स्वर्गका प्रलोभन दुःख भरी इस दुनियामें उतर पड़े और लाख रूप बदले, जिसे अपने लिए कुछ चाह नहीं, अपने पास कुछ रखना नहीं, उसे क्या? उसकी आँखोंमें प्रलोभन सबल सात्त्विकताका बाना पहनकर झाँकता है, कटुता मधुरताके रसमें पगकर उसके आँगनमें खेलती है और आँसू मुसकानकी स्वर्णमयी किरणोंमें प्रतिबिम्बित हो खिल उठते हैं।

अखण्ड यौवन, अमिट स्फुरणा, अथक उल्लास और अम्लान प्रगति वीरताके शब्द-चित्र हैं। सफलताके सुनहले वातावरणमें तो मुर्दे भी बोल उठते हैं, असफलताके घने अंधकारमें भी जिसके अरुण अधरोंपर मधुर मुसकान दोयजके चाँदकी रेखा-सी चमक उठती है, असली वीर वह है।

ब्रूनो? हाँ, ब्रूनो वीर था। अपने विश्वासके लिए वह जीवन भर

लड़ता रहा। सफलताके ऊँचे सिंहासनपर बैठनेका अवसर उसे नहीं मिला, पर दम्भकी सारी दुनिया थी एक तरफ और वह था एक तरफ, फिर भी कभी उसका पैर रुका नहीं और उसका उद्धत ललाट कभी झुका नहीं। वीर ब्रूनोके जीवनकी चरितार्थता यही है।

सोलहवीं शताब्दीके मध्याह्नमें रोमके एक सिपाहीके घरमें उसने आँखें खोलीं और नेपल्समें अपने चचाके घर उसका विद्यारम्भ हुआ।

उसने इटालियन भाषा पढ़ी और लेटिन, ग्रीक एवं स्पेनी भाषाओंपर पूर्ण आधिपत्य प्राप्त किया।

विज्ञानमें उसकी रुचि थी, गणित उसे प्रिय था, कवि होकर तो शायद वह जन्मा ही था और संगीतका उसने गहरा अध्ययन किया। चार भाषाओंका ज्ञान और गम्भीर पाण्डित्य प्राप्त करनेके बाद वह १५ वर्षका हुआ। उसके किशोर मुखपर गम्भीर पाण्डित्यकी आभा खिल उठी। चारों ओर उसकी प्रशंसा हुई, पर उसकी भूख बहुत गहरी थी। भोला-सा वह कुमार एकान्तवासके लिए निकल पड़ा जैसे ध्रुव भगवान्की खोजमें। बूढ़ोंने उसे समझाया, वयस्कोंने दाम्पत्य-रसका निरूपण किया, पर वह सिपाहीका पुत्र था चारों तरफ दृष्टि डालकर वह आगे बढ़ गया।

१३ वर्ष! ओह, वे लम्बे १३ वर्ष, उसने एकान्तमें बिताये। सतत साधनामें स्नानकर उसका गम्भीर अध्ययन निखर आया। उसके जीवनका प्याला ज्ञानके सोमरससे लबरेज हो छलक उठा। वह भीतरसे बाहर आनेके लिए मचलने लगा। ब्रूनोने अपनी एकान्त साधना-कुटीसे बाहरकी ओर झाँका।

चारों ओर धर्मके नामपर शैतानियतका आतंकपूर्ण साम्राज्य छाया हुआ था। धर्माध्यक्षोंकी तूती बोल रही थी और ये धर्माध्यक्ष दानवी दम्भके पताकेसे, अत्याचारकी मूर्ति, दर्पके दैत्य और विचारोंकी स्वतन्त्रताके शत्रु, अन्धविश्वासके संरक्षक, शक्तिके सामन्त और अनाचारके अगरक्षक। ब्रूनोकी साधना विद्रोही हो उठी, वह सिहरकर बाहर आया।

उसकी वाणीसे फूट निकला—"अंधे होकर शैतानियतके पीछे दौडनेवालो, आँखे खोलो, बुद्धि भगवान्का सर्वोत्तम वरदान है, किसी भी पथको, विचारको, बुद्धिकी कसौटीपर कसकर कदम बढाओ।"

अन्ध-विश्वासकी उस अँधेरी दुनियामे ब्रूनोके बुद्धिवादकी यह गर्जना प्रलयकालीन बिजलीकी तरह कौंध गई। जनता चौंकी और स्वार्थान्ध धर्माधिकारी सजग हुए। उन्होने देखा—उनके दुर्जय दुर्गमे नाटा-सा एक आदमी कहींसे घुस आया है और गुरुडम-गढकी दीवारे उसकी गर्जनासे टकराकर काँप रही है। दुरभिसन्धियाँ प्रारम्भ हुई, पादरी खड्गहस्त होकर उठे, पर ब्रूनो तबतक आगे बढ गया।

जिनोईज प्रान्तमे कुछ दिन बैठकर उसने ज्योतिषका गहरा अध्ययन किया और पृथ्वीके घूमनेका वह जोरदार समर्थक हो गया, दूसरे लोकोके अस्तित्वमे भी वह विश्वास करने लगा। यह उसका दूसरा भयकर अपराध था।

धर्मो के सम्बन्धमे वह सहिष्णु था—मतभेदका स्वागत उसे अभीष्ट था, पर अपनी आत्मा और विवेकका मूल्य भी वह जानता था। धर्मान्धता एव गुरुडमके उस अँधेरे युगमे वह वैज्ञानिक बुद्धिवादकी प्रतिष्ठा चाहता था।

ईश्वरमे उसका दृढ विश्वास था, पर उसका ईश्वर ईसाई धर्मके किसी खास सम्प्रदायके ऊलजलूल नियमोमे आबद्ध न था और न वह गिरजाघरमे ही सीमित था। इस सम्बन्धमे ब्रूनोका ज्ञान साधनामय अन्तर-दर्शनके आलोकमे भारतीय वेदान्तका सच्चा सहगामी था।

मानवताका वह पुजारी था, पर मानवताके विरोधियोपर उसकी वाणी अगार बनकर बरसती थी, उसके तर्क त्रिशूल हो उठते थे और उसकी गर्जना उन्हे तिलमिला देती थी। उसकी भाषण-कलामे ओज था, प्रवाह और व्यावहारिकताकी सरसता थी, पर उस युगकी जनता धर्मान्धताके अन्धेरे

कूपमे डुबकियाँ ले रही थी, इसलिए उस तक अपनी आवाज पहुँचानेमे उसे काफी देर लगी, पर वह निराश न हुआ।

वह एक देशमे पहुँचता, कुछ करारे भाषण देता, कुछ लेख लिखता और कुछ पुस्तके प्रकाशित करता। धर्माधिकारी चौकते, उसपर चोटे करते और वह दूसरे देशमे बढ जाता। खेत काटनेका उसे मोह न था। वह खेत तैयार करता, बीज बोता और दूसरे बजरकी ओर आँख फेरता।

उस युगमे यातायातके आज-जैसे साधन न थे और न यह वातावरण ही था। ब्रूनो जैसे आदमियोके लिए प्रायः उसके पैर ही वाहन थे और धार्मिक मतभेद उन दिनो शत्रुताका पर्याय था। फिर भी उसने हिम्मत न हारी और १६ वर्ष तक वह अपने विचारोका प्रचार करता यूरोपके विविध देशोमें चक्कर काटता रहा।

जहाँ वह गया, विद्वानोसे बहसा, अधिकारियोसे टकराया और जनता से ठुकराया गया, पर उसकी सहिष्णुता अखण्ड थी—उसका धैर्य अटूट था। उसकी हिम्मत कभी टूटी नहीं, साहस छूटा नहीं। अपने लक्ष्यका वह दीवाना अपने ध्येयकी पूर्तिमे जुटा रहा। उसका सम्मान था विद्वानो की गालियाँ, उसकी प्रतिष्ठा थी जनताके हुल्लडोकी व्यगभरी तालियाँ, उसके कार्यका पुरस्कार था अधिकारियोकी क्रूर दृष्टि और उसके गम्भीर पाण्डित्यकी पूजा थी नास्तिकताका फतवा।

जेनेवा, जर्मनी, फ्रास, वेनिस, वर्टेम्बर्ग आदिमे प्रचार करके वह लन्दन पहुँचा। ओह, डेढ लाखकी आबादीका वह तबका लन्दन। रानी एलिजाबेथ वाला लन्दन, जहाँ भाषणकी स्वतन्त्रता जब्त, प्रेसपर पाबन्दी और प्रकाशनपर सैसर। बडी मुश्किलसे उसे आक्सफोर्डमे भाषण करनेकी आज्ञा मिली। उसकी वही गरज और विद्वानोकी वही कपकपी, आखिर एक दिन शास्त्रार्थ हुआ।

एक तरफ थे सुन्दर चोगो और जडाऊ अगूठियोसे सुसज्जित यूनिवर्सिटीके अधिकारी, जिनके चेहरोपर थी उजड्डता और जो पूर्णतया

शून्य थे सौजन्य और शीलसे। ब्रूनोके शब्दोमे, जैसे गॅवार ग्वाले! दूसरी तरफ था ब्रूनो, जिसका शरीर था सूखा और बाल थे रूखे, कपडे मैले और कोट इतना पुराना कि उसके बटन नदारद, पर चेहरे पर साधनाकी सात्विक सुषमा, पैरोमे दृढता, आँखोसे पैनापन, कन्धे तने हुए और सिर उभरा हुआ।

उन प्रोफेसरोके साथ थी शासनकी सत्ता और एकत्रित जनसमूह की सहानुभूति, पर ब्रूनोके साथ था उसका आत्मबल और उसके ध्येयकी पवित्रता।

ब्रूनोने अपने सिद्धान्तकी स्थापना की। प्रोफेसरोका धर्म-ज्ञान इन्साल्वेण्ट हो गया। यह तर्कका मैदान था, धर्म-पुस्तकके उद्धरण या प्राचीनता की दुहाई यहॉ वेकार थी। वे झुँझला उठे, गालियोकी झडी लग गई। ब्रूनो जब भी उठा, मुसकराया, शान्तिसे बोला और यो उसने विपक्षीको निरुत्तर कर दिया। तीन महीने तक आक्सफोर्डमे भाषण दे, वह लन्दन लौट आया और वहॉ विद्वानोसे मित्रतापूर्ण विचार-विनिमय करता रहा।

जब वह जर्मनीमे था, उसे रोमकी याद आई। ओह, मातृभूमिका प्रेम। रोम जाना खतरेसे खाली न था, क्योकि वहॉके पादरी उसपर खार खाये बैठे थे, पर वह खतरोसे खौफ खाता ही कब था? जर्मनीसे चलते समय उसने कहा—"मृत्यु डरनेकी चीज नहीं है और मनुष्यके जीवनमे तो अनेक अवसर ऐसे आते है, जब मृत्युका सामना करनेके लिए उसे मृत्युको निमन्त्रित करना पडता है।"

ब्रूनोके बोये बीजोमे अकुर फूटने लगे थे और यूरोपमे उसकी विद्वत्ताकी ख्याति हो चली थी। एक मित्रके निमन्त्रणपर जर्मनीसे जब वह वेनिस गया, तो वहॉकी साहित्य-परिषद्ने उसका सार्वजनिक सम्मान किया। धर्माधिकारी उसके इस सम्मानसे और भी भडक उठे। एक दिन जब ब्रूनो सो रहा था गिरफ्तार कर लिया गया। यह उसके मित्रका विश्वासघात था।

'होली आफिस [धर्मकी अदालत] मे उसका मुकदमा आरम्भ हुआ। ओह ये 'होली आफ़िस'। शैतानियतके इस चक्करमे जो गया, सो गया। इन आफिसोके न्यायाधीशका एक प्रश्न था–रोमन कैथोलिक बनते हो? इस प्रश्नके हॉ और ना पर ही अभियुक्तका जीवन-मरण निर्भर था। हॉ मुक्तिका पथ था और ना रौरव का। मृत्यु, जीवित दाह, काल-कोठरी, हण्टरोकी मार, यातना और परेशानी, ये इसके सोपान थे। ब्रूनोने यही पथ चुना।

उसने कहा–"मेरी भूल कोई मुझे समझाये, तो मै प्रायश्चित्तके लिए तैयार हूँ, पर कोई समझाये तो! और मेरे सिद्धान्त? वे अटल है, उन्हे बदलनेकी अपेक्षा मृत्युका आलिंगन मुझे अधिक प्रिय है।" ब्रूनोके विरोधी भी उसकी प्रतिभासे प्रभावित थे। उसके विरोधी वकीलने कहा था–'धर्मके विरोधमे खडा होकर ब्रूनोने मूर्खता की, पर उसकी विद्वत्ता विलक्षण है और मस्तिष्क अद्वितीय। आजके इस युगमे वह अपने ढगका इकला आदमी है।"

"कालकोठरीमे बन्द कर दो इस मूर्खको। चला है धर्मविरोध करने। वहॉ इसका मिजाज दुरुस्त हो जायगा।" पोपने दण्ड-घोषणा कर दी। ब्रूनो जेलकी ॲधेरी कोठरीमे ठूँस दिया गया। तब १५९३ सन् चल रहा था। १५९९ तक उसे नित नूतन पद्धतिसे सताया गया, पर ब्रूनो अटल रहा। ओह, ज्वालामुखीमे खेलनेके ये ६ वर्ष!

पोपने देखा–जेलकी यातनाऍ ब्रूनोका उद्धत ललाट नही झुका सकती। प्रतिहिसासे उसका अहकार जल उठा। ब्रूनो फिर न्यायालयमे लाया गया और उसे फॉसीकी सजा सुनाई गई। हॅसकर उसने जजोसे कहा–

---

* यूरोपके इन आफिसोकी कहानी रौरवसे भी अधिक रोमांचकारी है। पचासो हजार आदमी इनमे जिन्दा जलाये गये है, इतने ही फॉसी चढे है और लाखोको जेलोकी कोठरियोमे सडाकर मारा गया है।

"मै एक साधारण बन्दी हूँ और तुम शक्ति-सम्पन्न न्यायाधीश, पर दण्डका यह विधान घोषित होते समय तुम डर रहे हो और मै शान्त हूँ।'

उस दिन सन् १६०० की १७ वी फरवरी थी। रोमके एक मैदानमे मेला-सा लगा था। हजारो आदमियोकी भीड थी—उत्साहसे उछलती हुई और हर्षसे किलकारती, जैसे आज कोई खास तमाशा होनेको है। मैदानके बीचमे लकडियोकी एक चिता सजी थी। चिताके मध्यम एक मजबूत लट्ठा लगा था और उसपर बँधा था ब्रूनो!

अधिकारियोने कहा—"अब भी तुम कैथलिक चर्चकी शरणमे आकर जीवनकी भिक्षा पा सकते हो। याद रक्खो कि धर्मका द्रोही इस ससारमे शान्तिसे नही रह सकता।"

ब्रूनोके अधरो पर एक सुनहरी रेखा खिच गई। गम्भीर स्वरमे उसने कहा—"मेरा विश्वास अटल है। बुद्धिके क्षेत्रसे बाहर किसी धर्म-ग्रन्थका आदेश मान्य नही हो सकता। प्रत्येक विचार तर्ककी लेबारेटरीमे परीक्षित होना चाहिये। मुझे मृत्युका भय नहीं है। तुम अपना काम करो।"

पादरी हँस पडे। उनका यह हास्य जनताके अट्टहासमे मिलकर सारे मैदानमे गूँज उठा। लकडियोमे आग लगा दी गई। ज्वालामयी वह्निकी लपटे धू-धू कर जल उठी। यूरोपका वह महान् दार्शनिक, महान् कवि और महान् विचारक जीवित जलने लगा, पर उसके चेहरे पर अब भी वही शान्ति थी। ब्रूनो जलकर राख हो गया, पर अडिग रहा। यही उसकी साधनाकी पूर्णता थी।

आज रोमके उस मैदानमे ठीक उस चिताके स्थान पर एक भव्य पाषाण-मूर्ति खडी है। यह वीर-वर ब्रूनोकी स्मृतिका सम्मान है। १८८९ मे, ब्रूनोकी शहीदीके लगभग तीन शताब्दी पीछे उसके भक्तोने इसकी स्थापना की थी।

सत्यका पुजारी और ज्ञानका देवता महात्मा ब्रूनो जिन्दा जलकर भी अपनी सम्मानपूर्ण स्मृतिके रूपमें आज जीवित है, पर अत्याचारका पुतला वह पोप और उसका वह दम्भ-दुर्ग समयकी आँधीके झोंकोंमें टकराकर खील-खील हो गया और उसकी कलक-कालिमा आज भी विश्वके द्वार-द्वार उसकी मृत्युकी कहानी कहती फिरती है।

जेलकी उन डरावनी दीवारोंमें !

वे १९३२ के आतंक भरे दिन थे। मैं भी एक आज्ञा न माननेके अपराधमें उन दिनों दो सालके लिए सहारनपुर जेलका मेहमान था। रोज ही नये-नये कैदी आते थे। यह साधारण बात थी, पर उस दिन अचानक इस साधारणतामें एक असाधारणता आ गई। मैं ७ नं० वार्डमें बैठा बान बाँट रहा था कि सिसकियाँ सुन, चौंक पड़ा। एक नई कैदिन हत्याके अभियोगमें गिरफ्तार हो, महिला वार्डमें जा रही थी। उम्र होगी कोई २० वर्ष। रंग पक्का और आकृति सुन्दर, चढ़ती उम्र और आँखोंमें हसरतें, चेहरेपर वेदनाकी छाप और चालमें सुस्ती। मनपर एक ठेस लगी, यों ही हल्की-सी। ऐसे कैदी वहाँ रोज ही आते थे। शामको मैंने जमादारनीसे पूछा—"क्या किया है जी, इसने ?"

"दो लड़के मार डाले, छुरेसे इस राक्षसीने, बाबूजी !" जमादारनीने कहा। मनमें आया दयाका भाव उपेक्षामें बदल गया। स्त्री क्या है शैतान है पूरी।

मुकदमा होनेके बाद उसे ८ सालकी सजा हो गई। कचहरीसे लौटते समय उसे उस दिन फिर देखनेका अवसर मिला। उसके मुखपर वेदनाकी इतनी गहरी छाप थी कि मैं प्रभावित हुए बिना न रहा। फिर भी उसके सम्बन्धमें कुछ ज्यादा जाननेका अवसर न मिला, कुछ ही घड़ियोंमें मैं उधरसे निश्चिन्त हो गया और फैजाबाद तबादला हो जानेपर तो मुझे उसकी याद ही न रही।

जेलसे छूटनेके बाद ! मैंने नया मकान बदला था। शामको आकर मैंने अपनी पत्नीसे पूछा, तुम्हारा पड़ौस तो अच्छा है ? इसी समय पड़ौसकी एक लड़की आ गई और साथ ही श्रीमती मेहरोत्रा। मैंने लड़की

से उसका नाम पूछा, तो वह सकुचाई। मेरी मुन्नीने कहा—इसका नाम हाजरा है पिताजी! हाजरा नाम सुनकर श्रीमती मेहरोत्रा चौंकी, उनके मुँहसे निकल गया—ओह, उस अभागीका नाम भी हाजरा ही था!

"कौन हाजरा?" मैंने यों ही पूछा।

"जब मैं सहारनपुर जेलमें थी, तो वहाँ एक कैदिन थी हाजरा। बिचारी बड़ी दुःखी थी। मजिस्ट्रेटने उसे ८ सालकी सजा कर दी थी, पर असलमें वह निर्दोष थी।

मेरे हृदयमें एक पुरानी स्मृति जाग उठी। "मैंने भी उसे देखा था, उसके चेहरे पर बड़ी गहरी वेदनाकी छाया थी, पर उस दुष्टाने तो किसीके दो लड़के कत्ल कर दिये थे?" मैंने कहा।

श्रीमती मेहरोत्राकी आँखें बरस पड़ीं। उन्होंने काँपते कण्ठसे कहा—"किसीके नहीं, उसने अपने ही दो लड़के कत्ल कर दिये थे!"

"अपने लड़के! क्यों?"

उन्होंने उसकी कहानी आरम्भ की—

"हाजरा एक ग़रीब मुसलमानकी पत्नी थी। उसका मालिक गुलशन एक कारखानेमें मजदूर था। २०-२५ रुपये महीना वह कमाता था और उसीमें सब लोग आनन्दसे अपनी गुजर करते थे। हाजरा सुन्दर थी, यह सुन्दरता ही उसके सर्वनाशका कारण बनी। वह रोज कारखानेमें अपने पतिको रोटी देने जाया करती थी। एक दिन कारखानेके मालिककी निगाह उस पर पड़ी, पर प्रेमका प्रस्ताव हाजराने ठुकरा दिया, तो गुलशनको नौकरीसे अलग कर दिया गया। जो कुछ पूँजी थी वह एक ही मासमें समाप्त हो गई। दूसरा मास उधार पर चला, तीसरे मास फाके होने लगे। गुलशन नौकरीकी तलाशमें बाहर चला गया। हाजरा प्रतीक्षा करती रही। बच्चे भूखे तड़फने लगे, पर वह माँग-माँग कर उन्हें पालती रही। एक दिन गुलशनकी एक चिट्ठी आई। लिखा था—कहीं रोजगारका

बानक नहीं बना । आज भूखों मरते कई दिन हो गये, अब इस अन्धी दुनियासे जा रहा हूँ । खुदा तुम्हारी परवरिश करे ।

हाजरा कॉप उठी । जिस आशाके सहारे उसने ये ७ दिन काटे थे, वह भी आज टूट गई । उसने देखा घरमे वह अकेली है, खुद भूखी है, बच्चे भूखो बिलबिला रहे है और कोई सहारा नही । इसी समय एक बच्चेने कहा—"मॉ, भूखो दम निकल रहा है ।"

"सो जा, बेटा !" हाजराने प्यारसे कहा ।

"भूखे नींद कहॉ आती है, तू ही सुला दे !" बच्चेने कहा ।

हाजराके मनमे एक भीषण सकल्प उठा । उसने कहा—"अच्छा बेटा, मैने ही तुम्हे जगाया था, मै ही तुम्हे सुलाती हूँ । यो तडप-तडप कर सोनेसे एकदम सो जाना अच्छा है । तुम्हे सुलाकर मै भी सो जाऊँगी ।"

उसका मातृत्व उसके सकल्पके पथमे आकर खडा हो गया ।

"बेटा ! तुम जागते रहो और मै सो जाऊँ ?" हाजराने कुछ सोच-कर कहा ।

"नही अम्मॉ, पहले हमे सुला दो, जान निकल रही है ।" बालक-ने कहा ।

हाजरा उठी, भीतरसे अपने पतिका तेज छुरा उठा लाई और उसने बालककी गर्दन पर फेर दिया । खूनकी धार बह चली । रणचण्डीकी तरह वह उठी, पास ही दूसरा बालक सो रहा था, तडप-तडप कर वह अभी सोया था । हाजरा उसके पास जा पहुँची । बालक कोई स्वप्न देख रहा था । सोते-सोते सहसा उसने मुँह खोला । शायद रोटी मिल जानेका स्वप्न था । हाजराने एक ही हाथमे उसकी भूख शान्त कर दी ।

छोटा-सा चौक था, खूनकी नदी बह कर बाहर पहुँची और हाजरा जब अपनेको सुलानेका प्रयत्न कर रही थी पकडी गई ।"

कहानी सुनकर मै रो पडा !

"जेलमे इस बारेमे वह आपसे कुछ कहा करती थी क्या ?" मैने पूछा।

"वह ज्यादातर घुटनोमे सिर दिये बैठी रहती थी। कभी रो लेती, कभी चुप हो जाती। जहॉ तक बनता जेलके काममे लगी रहती। एक दिन जब रोटी आई, तो उसने कहा था—मुझे जेलखानेका पता होता, तो मै उन्हे क्यो बाहर जाने देती। सौ बहाने है, किसी न किसी बहाने हम सब जेलमे घुस आते। यहॉ लाख दुःख है, पर पेटका यह गड्ढा तो भर जाता है।

अब भी हाजरा जेलमे थी और श्रीमती मेहरोत्रा कभी-कभी उससे मुलाकात कर आती थी। उन्होने कहा—"अब वह बहुत कमजोर हो गई है। मै उसे दयाके नामपर छुडानेकी कोशिश कर रही हूँ। उसके छूट जानेकी उम्मीद होने लगी है। कामयाब हो गई, तो उसे अपने पास रख लूँगी और अपने दोनो बच्चे उसे सौप दूँगी।"

दूसरे दिन मैने जेलोके इन्सपेक्टर जनरलको उसके सम्बन्धमे पत्र लिखा, तो उत्तर मिला कि सॉपके काटनेसे उसकी अभी कुछ दिन हुए मृत्यु हो गई।

अपने सस्कारके अनुसार मेरे मनमे आया—यह सॉप गुलशन ही तो नही था, जो दुःखसे तडपती अपनी हाजराको यो आकर बुला ले गया ?

पैरिस-झीलकी उस भयानक संध्यामें !

१६१४ का जर्मन-वार उन दिनो दुपहरीमे था। कैसरका तेज तप रहा था, ससारभरमे उसके नामकी धाक थी। संसारकी महाशक्तियाँ, सपने मे उसे देखती, तो पसीनेसे तर हो जाती। बेल्जियमको वह कुचल चुका था, रूस हिल रहा था और फ्रासपर उसकी भयकर आग उगलनेवाली तोपे गरज रही थी, फ्रास परेशान था।

वह दिन फ्रासके जीवन-मरणका दिन था, अत्यन्त सकटपूर्ण। पैरिस घिरा हुआ था—फ्रासकी ही फौजके घेरेमे, किसीको भी शहरसे बाहर जाने की आज्ञा न थी–राजधानीका सम्मान खतरेमे था। पैरिसके पास ही झीलके उस पार जर्मनीकी फौजे पडी हुई थी। नागरिकोके लिए दीप जलाना और चूल्हा जोडना भी मना था, खाद्य-सामग्रीपर फौजका कब्जा था, जनताका जीवन ऊब उठा था, पर कही गति न थी–कुहारोकी चादर ओढे अपने सौन्दर्य और वैभवके यौवनमे इठलानेवाली पैरिस-परी मूर्छित-सी पडी थी। ओह, बडे दयनीय दिन थे वे ! तभीकी बात है।

मारिसेट भूखसे बिलबिलाया, अनमना-सा अपनी घडियोकी दूकानकी ओर जा रहा था। उसके पैर चल रहे थे, पर मस्तिष्क उसका शून्य था। अचानक वह किसी आदमीसे टकरा गया। क्षमाके भावसे उसने उसकी ओर देखा और वह खुशीसे चिल्ला उठा–"ओह यार सोवेज, तुम कहाँ ? कहो, खाने-पीनेका क्या डोल है ?"

"खाने-पीनेका डौल ? कुछ नही। परसो एक जगली कबूतर हाथ लग गया था, उसमे तीन साझी थे, तबसे अबतक पेट महाशय इन्तजार की शूलीपर लटक रहे है।"

"अजीब आफत है भाई। पहली जनवरी और यह मनहूसियत, आओ

न जरा झीलतक हो आएँ। तुम्हारा घर पास ही है, उठा लाओ काँटा, दो-चार मछलियाँ हाथ लगेगी, तो पेटमे गरमाई आयगी।"

"पागल हुए हो, अब झील कहाँ और काँटा कहाँ? यह फौजी घेरेका काँटा जो चारो ओर लगा हुआ है।"

"इस काँटेकी काट तो मेरे पास है यार, तुम मरे क्यो जा रहे हो, लाओ तो काँटा।"

"आखिर वह काट क्या है, मै भी सुनूँ तो।"

"दक्षिण मोरचेके सेनापति मि० डुमोली मेरे मित्र है, वे हमे बाहर जानेका परवाना और लौटनेका सकेत-शब्द दे देगे। कहो, अब क्या रुकावट है?"

ठण्डकका दिन, चढती हुई धूप, भूखा पेट, मित्रका साथ और सामने मछलियोसे भरी झील। मारिसेट और सोवेज काँटा फेककर मछलियोका शिकार खेलने लगे। सामने ही-दूरीपर जर्मन-फौजका शिविर था। उसे देखकर मारिसेटने कहा—"क्यो जी! जर्मन जर्मनीमे सुखसे रहे, फ्रासीसी फ्रासमे और दोनो एक दूसरेके सुख-दुःखके साथी रहे, यह बात इन लोगो के गले क्यो नही उतरती?"

"मनुष्यपर जब शैतान सवार होता है, तो वह राक्षस बन जाता है। आजकी दुनिया इसी हालतमे है और इसीलिए चारो ओर खूनकी नदियाँ बह रही है, सारा ससार अशान्त है।"

"इन बादशाहो और सरकारो पर अगर शैतान सवार है, तो ये आपसमे कट मरे या कमर पर भारी पत्थर बाँधकर इस झीलमे आ-डूबे, पर नये-नये नशे पिलाकर ये जनताको इस शैतानियतका शिकार क्यो बनाते है?"

इसी समय जर्मन-शिविर तोपोके गोलोसे गूँज उठा और पैरिसके किलेकी तोपोने आकाशमे धुआँधार मचा दिया, पर मारिसेट और सोवेजका इधर ध्यान नही था, वे मछलियाँ पकड़नेमे तल्लीन थे। अचानक

चौंककर मारिसेटने कहा—"क्यों जी, अगर ये जर्मन-सिपाही हमें यहाँ देख ले तो ?"

सोवेजको इस समय शिकारका मजा आ रहा था। काँटेसे बिना निगाह हटाये, रस भरे स्वरमें उसने कहा—"तो क्या है ? देख लें, तो फिर देख लें। वे हमारे पास आयेंगे, तो कुछ मछलियाँ हम उन्हें भी दे देंगे। अरे भाई ! आखिर दुनिया खानेके लिए ही तो लड़ती है।"

"पर जर्मन-सिपाहियोंकी भूख तुम्हारी मछलियोंसे नहीं बुझ सकती, नकी संगीनें तो तुम्हारे खूनकी प्यासी हैं कम्बख्तो !"

ऐं, चौंककर दोनोंने पीछेकी ओर देखा। पाँच जर्मन सिपाही संगीनें ताने खड़े थे। मारिसेट और सोवेज गिरफ्तार कर लिये गये।

जर्मनीके सुव्यवस्थित शिविरमें, एक बड़े कैम्पके सामने ऊँची कुरसी पर, एक विशालकाय अफसर फौजी रौबसे बैठा था और दो बन्दी उसके सामने उपस्थित थे—मारिसेट और सोवेज।

हवलदारने कहा—"सेनापति ! ये दोनों फ्रांसीसी जर्मन शिविरमें जासूसी करते हुए पकड़े गये हैं। मेरा अन्दाजा है कि ये हमारा कार्य-क्रम उड़ाना चाहते थे।"

सेनापतिने रोपकी मुद्रामें बन्दियोंकी ओर देखा। इस दृष्टिमें एक आतंक था, एक प्रश्न। अल्हड़पनसे सोवेजने कहा—"हम दोनों फ्रांसके साधारण नागरिक हैं और मछलियोंका शिकार करने ही झील पर आये थे।"

"युद्धके समय कोई साधारण नागरिक यहाँ नहीं आ सकता। मुझे मालूम है कि पैरिस घिरा हुआ है। याद रक्खो, मुझे बहकाकर तुम अपने घर नहीं लौट सकते।" धमकीके स्वरमें सेनापतिने कहा—"जानते हो जर्मन शिविरमें जासूसीका एकमात्र दण्ड गोलीका निशाना है।"अफसरकी तेज आँखें बन्दियोंके मुँहपर आ ठहर गईं।

मारिसेटने निश्चिंत भावसे कहा—"वीर सेनापति ! हम

भगवान्‌को साक्षी करके कहते है कि जासूसीके साथ हमारा कोई सम्बन्ध नही है ।"

सेनापतिका पौरुप गरज उठा—"चुप रहो कायर ! अपने भगवान्‌को याद करो और तैयार हो जाओ । जर्मन गोलीकी मार तुम्हारे सारे रहस्योका उद्‌घाटन कर देगी ।" मारिसेटने सोवेजकी ओर देखा । वह मछलियोकी थैलीकी ओर देख रहा था ।

"तुम्हारी प्राण-रक्षाका अब एक ही उपाय है ।" सेनापतिने कहा, तो दोनो बन्दियोकी आखे आशासे खिल उठी और दोनोके मुँहसे एक साथ निकल पडा—"क्या ?"

"फौजी घेरेके अन्दर जानेका सकेत-शब्द बताकर तुम निश्चित भावसे घर जा सकते हो ।" सेनापतिने नम्रतासे कहा ।

बन्दियोकी आशाभरी सुकुमार मुख-मुद्रा कठोरतामे बदल गई । कडक-कर सोवेजने कहा—"हम फ्रासके जासूस नही है सेनापति, पर उसके नागरिक अवश्य है और हमारे देशके नागरिकशास्त्रमे विश्वासघातका कोई परिच्छेद नही है ।"

"और अगर अपने राष्ट्रके साथ विश्वासघात ही प्राणरक्षाका वह उपाय है, तो सेनापति यह नोट कर ले कि फ्रासके नागरिक इज्जतके साथ मरना खूब जानते है ।"—मारिसेटने सोवेजका भाव पूरा करते हुए कहा ।

सेनापतिका चेहरा तमतमा उठा—"कुत्तो ! तुम्हारी फ्रासीसी नागरि-कताका यह जोश अभी ठण्डा हुआ जाता है ।"

सेनापतिकी ऑखे ऊपर उठी । बन्दियोंके सामने कुछ ही कदमपर अपनी सगीने साधे बीस जर्मन सिपाही उपस्थित थे । "धज्जियॉ उडा दो इन बदमाशोकी" गरजकर सेनापतिने कहा । बीस बन्दूके तनी, मृत्यु और जीवनके मध्यमे ओह, ये कुछ पल ! सेनापतिके सकेतपर स्वर्णका ढेर

बन्दियोंके कदमोंके पास लगा दिया गया। सेनापतिने मुहब्बतकी मुद्रामें दोनोंके कन्धोंपर हाथ रक्खा—"क्यों यह कीमती जान बेकार खो रहे हो ? एक तरफ यह वैभव है, दूसरी तरफ कुत्तेकी मौत ? तुम चाहो, तो तुम्हे जर्मनीके शासनमें कोई ऊँचा पद भी मिल सकता है। सुखमय-जीवन और दुःखमय मौत, दोनो तुम्हारे हाथ है। बोलो, क्या चुनते हो ?"

दोनो बन्दियोंकी आँखें मिलकर चार हो गईं। हृदयकी भाषामें एकने दूसरेसे राय पूछी। दोनोंके कन्धे तने हुए थे। मारिसेटने कहा—"सेनापति, सोनेके कुछ टुकडो पर मानवताके विनाशका पेशा करनेवाले सेनापति, तुम्हारी नजरोंमे सोनेके इस ढेरका कुछ मूल्य हो सकता है, तुम्हे यह मुबारक, गरीब नागरिकके लिए तो उसकी ईमानदारी ही उसका वैभव है।"

सोवेजने अत्यन्त दृढतासे कहा—"तुम्हारे हाथोंमे आज शैतानियतकी शक्ति है और हम जानते है, तुम्हारी बन्दूकें अभी कुछ क्षणोंमें हमारे शरीरकी धज्जियाँ उडा देंगी, पर मानवताके इतिहासमें ससार तुम्हारे नाम-पर घृणासे थूकेगा और हमारा नाम फिर भी सम्मानके साथ लिया जायगा।"

सेनापतिका धैर्य छूट गया। क्रोधसे तिलमिलाकर वह चिल्लाया—"ओह, मरने दो इन शैतानोंको।"

बीस बन्दूकें उठीं, सिपाहियोंकी सधी हुई उगलियाँ घोडोंपर जा पडी और 'धड्डम' के शब्दसे झीलका वह किनारा काँप-काँप उठा। कई दिनसे भूखे दो शरीर बीस गोलियोंकी राक्षसी मारसे तार-तार हो छितर गये।

ओह, वह दृश्य ! सोनेके सिक्कोंका ढेर और उसके पास पडे हुए दो मानवोंके शव—खूनसे लथपथ मासके कुछ लोथडे, जैसे प्रलोभन और निस्पृहताके दो विरोधी प्रतीक।

वे लोथडे उठाकर झीलमे फेंक दिये गये। मारिसेट और सोवेज जिन

मछलियोंका शिकार करने कुछ देर पहले आये थे, उनका महोत्सव हो गया—मछलियाँ उन्हें खा गईं।

स्वतंत्र फ्रांसमें आज भी वह झील है, उसका वह किनारा है और सुबह-शाम बहुत-से नागरिक वहाँ घूमने आते हैं। मारिसेट और सोवेज की चर्चा वहाँ प्रायः रोज ही होती है। सचमुच झीलके उस किनारेका कण-कण उनकी यादसे भरपूर है।

ओह मारिसेट, ओह सोवेज, ईमानदार देशभक्त नागरिकताके अमर प्रेरणा-पुंज!

मानवीय पशुताकी उस बाढ़में !

[१]

'मेरे जीते जी तुम्हे कौन गोली मार सकता है अकीला !'

सरदार-बहादुर ऊधमसिहने कहा और अकीलाको नाव परसे अपने सीनेके सायेमे खीच लिया। अकीलाको लगा कि अब वह अपने बापकी गोदमे है और उसकी हिडकियाँ बॅध गईं।

नावमे अकीला बेगमके ससुर, सास, पति और देवर गोलियोसे बिंधे पडे थे। वे क्या पडे थे, ये उनकी लाशे थी और यह हरकत, यह हलचल, जिन्दगीका कोई कारनामा न था, देहसे आत्माके विदा होनेकी ही रस्म थी। जेवर और दूसरे कीमती सामानके कई ट्रक भी उन लाशोके पास ही पडे थे।

अकीलाने एकबार नावमे झॉका और वह चिल्ला पडी—"सरदार साहब ! मै अब इस दुनियामे रहकर क्या करूँगी ? इन लोगोसे कहिए कि मेरे सीनेको भी अपनी गोलियोसे भून दे।"

सरदार-बहादुरने उसे और भी जोरसे अपने साथ चिमटाते हुए कहा—"मेरे जीते जी तुम्हे कोन गोली मार सकता है अकीला !" और उस सामानके साथ वे अकीलाको अपने घर ले आये।

अकीला बेगमके ससुर खान बहादुर हबीबुल्ला खा और सरदार बहादुर ऊधमसिंहके बीच खानदानी दोस्ती थी। दोनोके बाप भी आपसमे दोस्त थे और बाबा भी। दोनो एक दूसरेके लिए इतनी बार जान अडा चुके थे कि दोनोके बीच अब भेदका बाल कहीं टिक ही न सकता था। दोनो एकसे ही थे। दोनोकी बहू-बेटियाँ दोनोसे अपनोकी तरह ही मिलती-जुलती थी। अकीला बेगमकी शादीमे सरदार बहादुर भी शामिल हुए थे

और वहाँ यह जानना मुश्किल था कि लडकेका बाप खान बहादुर है या सरदार बहादुर !

आज खानबहादुर और उसका खानदान खत्म हो चुके थे और अकीलाको बैठा कर वे कह रहे थे—"मेरी अकीला, तुम होशियार हो, अक्लसे काम लेकर बिगडीको बना सकती हो। जो होना था हो गया। बह गई लहर कब दुबारा किनारेसे मिली है, इसलिए पिछली बातोंको एकदम भूल जाओ और आनेवाले दिनोंका नया नक्शा बनाओ।"

पीडामे डूबी अकीलाने यह सब सुना। सरदार साहबका स्वर आज उसे कुछ और तरहका लगा, पर उसने बिना धरतीसे आँख उठाये हुए ही कहा—"जब किस्मतने पेंसिल ही छीन ली, तो अब जिन्दगीका नया नक्शा क्या बनेगा सरदार साहब ! जिन्दगीकी गाडीको आगे खींचनेकी ताकत मुझमे नहीं है। अब तो आपके हाथों इज्जतके साथ मेरी मिट्टी ठिकाने लग जाय यही नक्शा है।"

ऊधमसिंहने उसे और भी अपने पास खींच लिया और बोले—"जो गया है, उसे पा नही सकता, पर जो पास बच गया है, उसे भी खो देनेकी बात सोचना कोई अक्लमन्दी नहीं है। फिर तुम्हारा बिगडा ही क्या है ? मेरा सब कुछ तुम्हारे कदमोमे हाजिर है।" बात पूरी करते ही उन्होने अपना हाथ अकीलाके कन्धेपर रख दिया। अकीलाने महसूस किया कि वे काँप रहे है। उसने उनकी तरफ देखा, तो आज उसे उनकी आँखोमे एक लपलपाती लालसा दिखाई दी।

अपनेको सम्भालकर अकीलाने कहा—"आज आपको हो क्या गया है सरदार साहब !"

"आज नही अकीला, मुझे तो जो होना था, उसी दिन हो गया था, जब पहली बार तुम्हें मैने खान बहादुरके ड्राइंग रूममें देखा था। तुम नहीं जान सकती कि मैने इतने दिन किस बेचैनीमे बिताये है !" सरदार

साहबने कहा और वे उसके और भी पास होते हुए बोले—"अब सब कुछ तुम्हारे ही हाथ है अकीला !"

अकीलाने उनका हाथ अपने कन्धेसे नीचे रखते हुए कहा—"आपने यह कहकर हमेशाके लिए एक बोझ मेरे सरसे उतार दिया है सरदार साहब ! मैं सोच रही हूँ कि कैसे आपका शुक्रिया अदा करूँ ?"

सरदार साहबकी आँखे चमक उठी। जरा उभरकर बोले—"मेरे जीते तुम्हे बोझ उठानेकी जरूरत नहीं। मैंने कल ही एक नई कोठी खरीदी है—वैल फर्निश्ड अकीला ! तुम उसमे बेगमकी तरह रहोगी। आराम, आरायश और इज्जत तुम्हारे कदमोपर लोटेंगे और मैं एक खादिमकी तरह हुक्मो की—"

उनकी बातोंके लच्छेको बीचमें ही तोड़ते हुए अकीलाने कहा—"हाँ, अब मुझे भरोसा हो गया है कि आप मेरी कब्र पर हर हफ्ते एक दिआ जरूर जलाया करेंगे।"

सरदार साहबने उत्साहके उभारमें अकीलाको दोनो हाथो अपनेमें दबोच लिया और उनके मुँहसे निकल पड़ा—"मैंने कब्र पर दिआ जलानेको तुम्हे नहीं बचाया अकीला !"

अकीला भड़भड़ाकर खड़ी हो गई—"मेरी जान बचानेमें आपका हाथ है ?"

वे उत्साहमे बह रहे थे, और भी जरा बहककर बोले—"बेशक !"

तमककर अकीलाने कहा—"तो उनके मारनेमें भी आपका हाथ है ही !" ऊधमसिंह उलझ गये थे—अपने ही फेंके जालमें, पर सुलझते हुए उन्होने कहा—"अकीला, तुम्हे तो मालूम है कि मेरे और खान बहादुरके ताल्लुकात कितने गहरे और पुराने थे !"

अकीलाने जाने क्या सुना, क्या नहीं, पर वह बिना पल भर रुके, अपने कमरेमें चली गई।

[२]

"क्या यह सच है ? क्या यह भी मुमकिन है ?" अकीलाने अपने तकियेमें मुँह दिये ही सोचा और वह हुबक पड़ी। उसे याद आ गये अपने ससुरके पास बैठे हुए सरदार ऊधमसिंह। देशकी आजादी और देशका बँटवारा दोनोंको हाथमें लिये १५ अगस्त १९४७ आया और स्वतन्त्रता-समारोहके साथ ही खून-खराबा आरम्भ हुआ। एक दिन सरदार साहब हमारे घर आये और मेरे ससुरसे बोले—"हालात बहुत नाजुक हो चले हैं और कब क्या हो जाय, कहा नहीं जा सकता। सोचते हुए भी मेरा कलेजा फटता है, पर अब कोई और रास्ता मुझे नहीं सूझता कि बाल-बच्चोंके साथ आप पाकिस्तान चले जायँ।"

उन्होंने गम्भीर होकर कहा—"मुझे तो ऐसा लगता है कि यह तूफाने बदतमीजी है और चार दिन इसे मजबूत हाथोंसे थामा जाय, तो यह रुक जायगा। फिर हम कभी लीगमें शामिल नहीं हुए, रामलीलामें हम उन दिनों भी हिस्सा लेते रहे, जब बेवकूफ मुसलमानोंने मस्जिदके सामने बाजा न बजानेका अन्धेर मचा रक्खा था, इसलिए मुझे अपने लिए तो कोई खतरा नजर नहीं आता। वैसे भी मेरे पास बन्दूक है, राइफल है, रिवाल्वर है। मेरी कोठीकी तरफ कोई तिरछी आँख देखेगा, तो उधेडकर रख दूँगा।"

मेरे ससुर बेफिक्र थे, तो सरदार साहब बेचैन और अन्तमें उन्होंने कहा—"खानबहादुर, आपकी बात ठीक है, पर आज दोनों तरफके आदमी भूखे भेडिये हो गये हैं। शुरुआत उधरसे हुई है और उसकी कापी इधर की जा रही है। अभी-अभी जो शरणार्थी उधरसे आये हैं, वे कहते हैं कि वहाँ नंगी औरतोंका जलूस निकाला गया है। अब यहाँ भी उसकी तैयारी है और इस सिलसिलेमें, मुझे कहते शर्म आती है कि बार-बार अकीलाका नाम लिया जा रहा है। ऐसा कुछ हो गया, तो मैं खुद मिट्टीका तेल छिडककर अपनी कोठीमें आग लगा दूँगा"

सुना तो ससुर साहब काँप उठे और तै हुआ कि सरदार साहब अपने आदमियोंकी देख-रेखमें सबको सामानके साथ नदी पार कराके दूरके एक छोटे स्टेशनसे गाडीमें चढा देंगे। हम लोग सुबह चार बजे नावपर चढे और पानीके बीचमें उन पहरेदारोंने ही सारे खानदानको गोलियोंसे भून दिया।

तो क्या यह सब मेरे लिए हुआ ? सरदार साहबने मुझे पानेके लिए ही यह पूरा मायाजाल रचा ?—तो क्या इन्सान इस हद तक भी गिर सकता है ?

अकीला सोचती और सोचती ही रही। तभी उसके कानोंमें पडे किसीके ये कडखते बोल—"सरदार साहब ! आपके घरमें लाखोंका माल आ गया और ऐसी हूर-परी, जिसका कोई जोड नहीं, फिर भी आप हमारा इनाम पाँच हजारसे चार हजार कर रहे हैं। हमने फाँसीका फन्दा गलेमें डालकर आपका काम किया है। आखिर हमारा कसूर क्या है ?"

अकीलाने उठकर खिडकीके शीशेसे झाँका तो सरदार साहबके सामने वही आदमी खडा था, जिसने नावमें गोलियाँ चलाई थीं और उसे वे एक हजारके नोट और दे रहे थे। अब सब कुछ उसके सामने साफ था !

वह आदमी उनके कमरेसे बाहर हुआ कि अकीला तेजीसे उनके सामने आ खडी हुई। कडककर उसने कहा—"अकीला, तुम्हें तो मालूम है कि मेरे और खानबहादुरके ताल्लुकात कितने गहरे और पुराने थे ! जी हाँ, मुझे अब यह भी मालूम हो गया है कि आपने उनकी दौलत हडप ली, उनको तमाम झंझटोंसे निजात दिला दी और अब उनके बेटेकी दुल्हनको अपनी वेश्या बनाना चाहते हैं। सचमुच आपके और उनके ताल्लुकात गहरे और पुराने थे !'

बहुत नरम होकर वे बोले—"तुम मुझे गलत समझ रही हो अकीला ! यह अब छिपाना बेकार है कि मैंने तुम्हारे प्यारमें अन्धा होकर

अपने दोस्तका घर उजाडा, पर यह सरासर गलत है कि मैने उनकी दौलत हडप ली और तुम्हे मै अपनी वेश्या बनाना चाहता हूँ। उनकी दौलतमे अपनी भी सारी दौलत मिलाकर मै तुम्हारे कदमोमे रख दूँगा और तुम्हारी जिन्दगीको इस तरह ढालूँगा कि तुम सारे मुल्कपर छा जाओ और तवारीख तुम्हे याद रक्खे। मेरे इरादोके साथ ऐसा जुल्म न करो अकीला!"

अकीला भभक उठी—"सरदार साहब, यह सारी दौलत आप मेरे कदमोमे क्यो रखेगे, यह आपको रास्तेमे यो ही पडी तो नही मिल गई। इसे तो आपने अपनी सारी अक्ल और हिम्मतसे इकट्ठा किया है। इसके लिए तो आप ऐसा इन्तजाम कीजिये कि यह मरनेके बाद भी आपके साथ जा सके।

और मै? मेरी फिक्र आप न कीजिये, मेरी जगह न आपकी गोदमे है, न तवारीख-इतिहासमे, वह तो कब्रमे है, जहाँ मै अब जल्दी ही पहुँच जाऊँगी।"

ऊधमसिह गिडगिडा उठे—"मुझे और अपनेको एक साथ बर्बाद मत करो अकीला!"

"बर्बाद?" अकीलाके होठोपर हँसीकी एक रेखा खेल गई—"मै तो आपको और अपनेको बर्बादीसे बचानेका ही नकशा बना रही हूँ मेरे बुजुर्ग!"

"मैने तुम्हे कब्रमे सुलानेको यह सब नही किया अकीला। अक्लसे काम लो और बदकिस्मतीको खुशकिस्मतीमे बदल लो। मै तुम्हे नये जमानेकी नूरजहाँ बनाना चाहता हूँ मेरी रानी!" ऊधमसिहने अपनेको साधकर कहा।

अकीला तीखी हो उठी—"बेहया कुत्ते! मै नूरजहाँ जैसी बेगैरत नही हूँ कि अपने जीवनसाथीको कत्ल करनेवालेकी गोदमे इठलानेके सपने देखूँ और हुकूमत-इज्जतके नशेमे औरतकी खानदानी गैरतको भूल

जाऊँ। मेरे भीतर एक पठान बापका खून है, मै तवारीख—इतिहासमे नही, इन्सानियतके रजिस्टरमे अपना नाम लिखाना पसन्द करती हूँ।'

और अकीला तेजीसे फिर अपने कमरेमे चली गई।

[२]

दूसरे दिन एक जोशीली भीड सरदार साहबकी ऊँची कोठीके सामने खडी नारे लगा रही थी–हिन्दुस्तान जिन्दाबाद। सरदारने अकीलासे कहा–"अब भी मान जा अकीला, क्यो अपनेको बेइज्जत कराती है?"

"इज्जतका नाम मत ले शैतान, एक गैरतदार औरतके लिए अपने साथीके हत्यारेकी वासनाका खिलौना बननेसे धर्मान्ध भेडियोका शिकार बनना कही अच्छा है।"

और अकीला खुद झपटकर दरवाजेके बाहर आ गई। उसके रूप, यौवन और शालीनताकी चमकसे एक बार तो लोग स्तब्ध रह गये, पर फिर उनका शैतान जाग उठा और एक मिली-जुली आवाज गूँजी—हवनकुण्ड!

ऊधमसिह उसके पास खडा था। उसने कहा–"अकीला, अब भी जिद छोड दे। मेरे साथ शादीका वादा करनेपर मै तुझे बचा लूँगा, वरना नगी करके तेरा जुलूस निकाला जायगा और तुझे हवनकुण्डमे झोक दिया जायगा।"

अकीलाके भाव-भरे होठो पर फिर बिजली नाच उठी। उसने कहा—"तो क्या आपकी रायमे मै इस वक्त कपडे पहने हुए हूँ और जिन्दा हूँ? अपनी ऑखोका इलाज कराइए। मै इन्सानियतकी, गैरतकी, हयाकी, मजहबकी सॉस लेती लाश हूँ। मेरा नगा होना क्या, मेरा जीना-मरना क्या?"

"नगी कर दो इसे।" भीडने हुकार की और कई हाथोने उसके कपडे तार-तार कर दिये। आगे-पीछे भीड, बीचमे अकीला। इन्ही सडको

पर पहले भी एक दिन बाजे-गाजेके साथ अकीलाका जुलूस निकला था, जब वह डोलेमें बैठी दुलहन बनकर आई थी।

और यह सामने ही तो है हवनकुण्ड ! एक कुवाँ-सा गड्ढा-लकडीके कुन्दोंसे भरा हुआ, दहकती आगसे चमचमाता और भयानक ! उसके चारों ओर भीड और किनारे पर अकीला ! आग-सी चमकदार, स्वस्थ, कुन्दन-देह, बाल बिखरे और आँखोंमें पथराई भावनाएँ !"

भीड आसुरी जोशसे भरी, उभर-उछलती। भीडके नेताने उससे कहा—"बोल, हिन्दुस्तान जिन्दाबाद ?"

अकीलाने पूछा—"एक हिन्दुस्तान वह था, जिसमें एक औरतकी इज्जतके लिए लका फूँकी गई, एक हिन्दुस्तान वह था, जिसमें एक औरतके लिए महाभारत लडा गया और एक हिन्दुस्तान यह है, जिसमें एक नगी औरत हजारों मर्दोके बीच खडी की गई है और हरेक उससे छेड करनेको, उसे शराबकी एक घूँटकी तरह पी जानेको बेचैन है। बताओ मेरे भाइयो ! मैं कौनसे हिन्दुस्तानको जिन्दाबाद कहूँ ?"

और अकीला खुद उस हवनकुण्डमें कूद पडी।

भारतमाता जीतेजी जल रही थी और उसके पुत्र भारतमाताकी जय बोल रहे थे।

झूठके उस कड़वे धुएँमें !

[१]

बचपनमें जिस विद्यालयमें मैं पढ़ता था, उसके ठीक सामने ही था विशाल तालाब—देवीकुण्ड। आज तो इंच-इंच जानता हूँ कि उसमें कहाँ कितना पानी है, पर उन दिनों तो मेरे लिए उसके पानीका परिमाण था–हाथी-डुबान!

पिताजीने एक दिन कहा था–"देखो बेटा, देवीकुण्डमें हाथी-डुबान पानी है, उसमें कभी न घुसना!" पिताजीसे सुना था कि मेरे बड़े भाई नहरमें डूब गये थे सो उनका मुझे समझाना सही ही था, पर मैं देखता कि और लोगोंके साथ मेरे साथी भी उस हाथी-डुबान पानी पर तैरते हैं, किलकारियाँ करते हैं और तालाबके बीचों-बीच खिले कमल तोड़कर लाते और कमलगट्टे तोड़कर खाते हैं।

मेरा भी जी मचलता, ललचता और इस तरह मेरी नसें मसमसातीं कि मारूँ छलांग, पर मेरे गुरुजी जो सामने बैठे रहते। संयोगवश एक दिन वे गये कहीं दावतमें और मौका देख मैं घुसा देवीकुण्डमें। हाँ, किनारे ही किनारे, बस यों ही कोई दो-तीन पैड़ी, पर उतने ही उतारमें मुझे समुद्रका आनन्द आ गया और जी उमँगा कि लगाऊँ एक छोटी-सी तैरी–हाँ, किनारे ही किनारे और मैं तैरता तो क्या भला, छपछपाने लगा!

अभी मैं रसमें आ ही रहा था कि बड़े कछुवेने मुझे छू दिया और बस मेरी सिट्टी-पिट्टी गुम! मैं हबकाया-सा उछल पड़ा पर उछलकर फिर अपनी जगह, पैर रख लेना तो खिलाड़ीका काम है–मेरे पैर उखड़ गये और पैर उखड़े कि आदमी गया। मैं भी बस गया ही गया और लगा डुबकी खाने।

घबराहटमे आदमी लम्बे साँस लेता है, पर मै लम्बे तो लम्बे, नन्हे साँसो भी मजबूर साँस है—हवा खींचना और मै पानीके भीतर। अब साँस लूँ, तो मरा, न लूँ, तो घुटा और इस मुसीबतके साथ मेरे भीतर यह ज्ञान कि मै मर रहा हूँ। मेरी चेतनामे मेरी मृत्यु और छाती-पीटती मेरी मा और गुम-सुम मेरे पिता, पर तभी मेरे पैरोके नीचे जाने कैसे आ गई फिर पैडी और मेरे पैर टिक गये। पैर टिके कि आदमी सँभला और सँभला, तो बस सँभला!

इस पैर उखडने और सम्भलनेमे लगा होगा मुश्किलसे एक मिनट! हाँ, एक मिनट, जो पलक मारते निकल जाता है यों, पर इस मिनट मे जाने उस दिन कितनी दुनिया मे घूम गया। वह दमघोटनी घटना जीवनमे जब-जब मुझे याद आती है, मुझे याद आ जाते है—जोसफ डेविड कनिंघम, जिन्हे मै 'इतिहासोके इतिहासका शहीद' कहकर अपनी कलमको सदा ही गदोंगुबारसे बचाये रखनेकी प्रेरणा पाता रहा हूँ।

[२]

उन्नीसवी सदी जब अपनी बारहवी वर्षगाँठ मना रही थी, वे इगलेंड मे कहीं जन्मे। आदते अक्खड, दिमाग घुमक्कड और स्वभाव साहसी, यह है उनके बचपनकी एक धूपछाँही तस्वीर। जवानीने उनके जीवनकी खिडकीसे झाँका, तो यह तस्वीर जरा निखरी और वे इरादोकी बुलन्दी पर दिखाई दिये। इगलैंडके लिए तब भारतके दरवाजे खुल चुके थे और वहाँका साहस तब अपने फैलावके लिए इधर ही झाँकनेका आदी हो चला था।

कनिंघमने भी इधर ताका, तो उनकी घुमक्कडी, इरादे और हिम्मत तीनो उभर उठे और यह लो, सन् १८३४ मे वे आ पहुँचे भारत। कनिंघम एक बाईस वर्षका नौजवान जिसका दिल-दिमाग ऊँची उडानो-से भरा-पूरा! ये वे दिन जब भारतमे इगलैडके उजड्डोकी धूम थी। वे आते, फौजमे भरती होते, गुण्डागर्दी मचाते और तीसमार खा मशहूर हो

जाते, पर कनिंघम यहाँ तीसमार खाँ होनेको नही, कुछ और ही बननेको आया था। वह दूकानदार न था कि जो खपा, ले धरा, वह तो एक झरना था, जिसे अपनी ही राह बहना था—भले ही राह देरमे मिले।

१८३४ से १८३७—पूरे तीन साल कनिंघमको अपनी राह बनानेमे लगे, पर वह निराश न हुआ, जुटा रहा, वह घुमक्कड साधक था, कोई आवारा छैल नही। अब वह कर्नल वेडका सहकारी, जो सिख-सीमापर गवर्नर जनरलके एजेण्ट और इस तरह पचीस वर्षकी अवस्थामे कनिघमने भारतकी शासकीय राजनीतिमे पहला कदम रक्खा।

[३]

पजाब-केशरी महाराजा रणजीतसिंहसे १८३८ मे लार्ड आकलैंड मिले, तो कनिघम भी साथ थे और प्रथम सिख-युद्धमे भी वे स्वय उपस्थित रहे। इस तरह सिख-अग्रेज सम्बन्धोके, दूसरे शब्दोमे सिखोके तात्कालिक इतिहासके वे प्रत्यक्षद्रष्टा साक्षी थे। वे उनमे न थे, जो इतिहासको पढकर जानते है। वे उनमे थे, इतिहास जिनकी आँखोके सामनेसे स्वय गुजरता है। फिर उस समयकी सारी दस्तावेजे पढनेका उन्हे अवसर मिला था और इस तरह हर छिपा रहस्य भी उनके सामने खुली बात थी।

अपने पदके कारण वे बडे आदमियो और बडी गुत्थियोके बीच थे, तो अपने स्वभावके कारण वे सर्वसाधारणके साथ थे और इस तरह वे आसमानके साथ ही बाते न करते थे, धरतीकी भी सुनते थे।

आठ वर्ष वे फीरोजपुरमे रहे। तब बहावलपुरमे एजेण्ट हुए और इसी तरहके कई दूसरे पदोपर काम करते हुए अन्तमे भूपाल राज्यकी पोलिटिकल एजेन्सीमे पहुँच गये।

अब वे सघर्षमे नही शान्तिमे थे, पर कर्मठोके लिए शान्ति, नये कर्मका निमन्त्रण है। कनिंघमके हाथ-पैरोसे अधिक उनका दिमाग उन्हे पुकार रहा था—'कुछ करो न अब ?'

भीतरकी इस पुकारको बाहरसे एक उपहार मिला कि कनिंघमके बड़ोंने कहा कि वे सिखोंका इतिहास लिखें। 'रोनेको जी चाहता था, बिसर पड़ी!' कनिंघमकी पिण्डलियाँ मचमचा रही थीं कि राहने उन्हें पुकारा और राह भी मनपसन्द। अब वे इतिहास-द्रष्टासे इतिहास-स्रष्टा होने जा रहे थे। उनका मन उस शर्बतसे भरा था, जिसका स्वाद सिर्फ निर्माताओंकी जीभ ही जानती है। राइफलें अपनी कृतियोंको स्थायी बनानेके लिए कलमके द्वार भिखारिणी थीं इस समय!

कनिंघमको भीड़में रुले, अजाने साथी न खोजने थे। सामने घूम रहे परिचितोंको पुकार भर लेना था। इतिहास उनके सामने ही था कि वे उसे लिख लें और वे लिखने लगे। कोई उलझन न थी, वे तेजीसे बढ़ चले कि पहुँच गये और यह हो गया तैयार—सिखोंका इतिहास! गोते-मारको जैसे मोती मिले, माँने जैसे बेटा जना और किसानोंने जैसे खेती काट ली। कनिंघम अब खुशीसे भरे और ऊँचे भविष्यकी उम्मीदोंसे लबालब!

[४]

शादीकी शहनाइयोंके बीच कभी-कभी मृत्युका समाचार भी आया करता है, जो आँधीकी तरह खुशियोंके बगीचेको पलक मारते झकझोर मारता है।

कनिंघमके साथ भी यही हुआ। उनका इतिहास उनके बड़ोंकी मेज पर क्या पहुँचा, एक भूकम्प आ गया। उन्होंने उमगोंसे भरे और आँखोंको पूरी तरह खोले, जो इतिहासके पन्ने उलटे, तो अपनी तारीफोंके अम्बार देखनेको ही तो पर उसमें उन्हें क्या दीखा? उसमें दिखाई दिये उन्हें अपनी बेईमानियोंके जनाजे, चालाकियोंके चक्कर और उनके दुश्मनोंकी वीरताके स्मारक!

वे शिखर पर चढ़ते-चढ़ते खाइयोंमें जा गिरे। गिरकर कमजोर

रोता है और ताकतवर गरजता है ! वे कनिंघमके वडे थे, कनिंघम उनका मातहत था। कनिंघमको वे कुचल सकते थे और यो ताकतवर थे। गवर्नर जनरल मार्क्विस आफ डलहाउजीने उन्हे नौकरीसे अलग कर दिया और उन्हे जातिद्रोही कह, लाछित भी किया !!!

जब वीणाकी झकार कानोमे रस बरसाने को हो और अचानक उनपर आ पडे नगारेकी चोट, तो नसोमे एक खास खलबली-सी मच जाती है। कनिघमका भी अब यही हाल था। उसे प्रशसाकी जगह नृशसा और उपहारकी जगह दुत्कार मिल रही थी।

मुश्किलसे अपनेको सँभालकर कनिघमने अपना इतिहास फिर पढा—अपनी पुस्तककी तरह नही, एक क्रूर समालोचककी तरह और उस समय उसमे तनाव इतना कि वह बैठ न पाया और अपनी खिडकीपर पोथी धरे खडा ही रहा। उसे होश न था, वह अपने आपेमे ही न था, तो थकानकी शिकायत पैर किससे करते ?

पुस्तक पढी, तो उसमे फिरसे एक नया जोश आया और बालककी तरह अत्यन्त कोमलतासे अपनी पुस्तकको थपथपाकर उसने कहा—"इसमे तो एक भी बात ऐसी नही, जिसके लिए विद्वान् जजोकी सभामे मै अकाट्य प्रमाण न दे सकूँ ।'

उसके किसी अपनेने कहा—"तुम्हारी पुस्तकमे कोई गल्त बात नही है कनिघम, पर इससे हमारी जाति कलकित होती है !"

"ओह, यह बात है'—उसने सोचा—"मेरी जाति अपनी नीचताओसे कलकित नही होती, उन नीचताओको प्रकट करनेसे कलकित होती है और इसलिए उसकी नजरोमे इतिहासका काम आजके सत्यको ज्योका त्यो कलकी पीढियोको सौपना नही, आजकी कालिमाको शृगारका स्वरूप देना ही है।"

कनिघमने यह सोचा और एक तूफानी धक्का-सा उनके हृदयमे लगा। उस दिन देवीकुण्डमे जिस तरह मुझे साँस लेना असम्भव हो गया

था, आज उन्हे हो गया। वे अपने पलगपर बैठ गये। हॉ, सचमुच बैठे नही वे—बस बैठ ही गये। अब पलगपर वे नहीं; उनकी लाश थी। उन दिनो १८४६ का सन् अपनी विदाईकी तैयारियॉ कर रहा था और बेचारे कनिंघमकी भूरी ऑखोने तो अभी ३७ वसन्त ही देखे थे।

[५]

अभी उस दिन कनिंघमसे बाते करनेका मौका मिल गया मुझे। वे मेरी कल्पनाके ऑगनमे अपने पलगपर पडे थे। उनका इतिहास उनकी छातीपर था, उनके दोनो पजे, उस इतिहासकी जिल्दपर और वे टकटकी लगाये, उसे अपनी अन-झपकी ऑखोसे देख रहे थे जैसे कोई स्टैच्यू हो।

मैने कहा—"कनिंघम भाई, तुम नौकरीसे क्या अलग हुए, हमसे—जीवनसे ही अलग हो गये यह तो कोई हिम्मतकी बात न हुई? बहादुरीका इतिहास लिखने वालेको तो अपनेमे बहादुर होना चाहिए।"

कनिंघमने बिना ऑखे झपके और बिना सिर हिलाये, दर्दभरे स्वरमे कहा—"तो क्या मेरे दोस्त, मै नौकरी छूटनेसे ही दुनिया छोड आया? मेरे भोले भाई, उस नौकरीने मुझे नही, मैने ही उस नौकरीको बनाया था और मै चाहता, तो वैसी दस नौकरियॉ फिर बना सकता था।"

"तो फिर असली बात क्या थी मेरे साथी कि जिससे यह अनहोनी हुई?" मैने बहुत ही मुलायम और मीठे होकर पूछा।

कनिंघमने कहा—"वाणी आजकी शक्ति है और कलम कलकी मॉ जो आजकी भूलो और भलाइयोका पिटारा कलकी पीढियोको भेट करती है कि वे अपने आपमे भूलोसे भटके नही और भलाइयोसे भर-पूर हो!"

कनिंघमने एक गहरी सॉस ली और बहुत गहराइयो तक भीगे-भीगेसे होकर बोले—"मैने अपने इतिहासमे यही तो किया था, पर मेरी जातिने उसे पसन्द न किया, तो उसके यही माने हुए कि आजके मॉ-बाप अपने

कलके बच्चोंको जान-बूझकर और एक संगठित योजनाके साथ धोखा देनेको कमर कस उठे !'

कनिंघमकी स्टैच्यू-सी देहमें एक कंपकपी-सी आ गई और बहुत ही निर्जीवसे होकर वे बोले—"ओह, इसका और क्या अर्थ कि हमारे बच्चो, हम तो गिरे ही, तुम भी गिरते रहना, हम तो उठ न पाये, पर तुम भी न उठना तो हमारी कलम बस पीतलपर सोनेका मुलम्मा करनेवाली ब्रश है, सच्चाइयोंकी मूर्तियाँ गढ़नेवाली छेनी नहीं !

और यह सब मैंने सोचा, तो मेरी आत्माके चारों ओर एक कड़वा धुवाँ भर गया। यह धुवाँ इतना घना था कि साँस लेना मेरे लिए असम्भव हो गया और मेरा दम घुट गया ?'

मैंने देखा—कनिंघम अब भी ज्योंके त्यों पड़े थे। उनका इतिहास उनकी छातीपर था, उनके दोनों पंजे उस इतिहासकी जिल्द पर और वे टकटकी लगाये, उसे अपनी अनझपकी आँखोंसे देख रहे थे जैसे कोई स्टैच्यू हो।

रेलके पहियोंकी घड़घड़ाहटमें !

उसका नाम था मोती और जाति श्वान, पर उसकी सुन्दर मनभावन मूर्ति एवं प्रेम-पूर्ण व्यवहारने उसे मेरे गृहस्थकी शिशु-समितिका एक सदस्य बना दिया था—सब उसे अपने बच्चोंकी तरह प्यार करते थे। वह वृद्धोंका कृपा-पात्र, युवकोंका मित्र एवं शिशुओंका सहचर था। सभी उसे हृदयसे चाहते थे और सबको वह।

उसे इस घरमें लानेका श्रेय मुझे प्राप्त था, इसलिए उसके प्रति मेरा आकर्षण अपेक्षाकृत अधिक था और मोती तो मुझपर जान ही देता था। उसके इस घरमें आनेका भी एक इतिहास है—मनोरञ्जक और उल्लेखनीय। उसका जन्म नगरके एक दूसरे कोनेमें हुआ था—एक सुन्दरी मनस्विनी माताके गर्भसे। मैं प्रात. उसी रास्ते विद्यालय जाया करता था—प्रतिदिन मैं उसे देखा करता, खान हिदायत-उल्लाके विशाल द्वारपर अपनी माँके साथ वह बैठा रहता। मनमें कोई भाव न था—बस इतना ही कि 'अच्छा होनहार कुत्ता है'।

मोतीकी अवस्था उन दिनों तीन-चार मास रही होगी, पर एक दिनकी आकस्मिक घटनाने उसे खान साहबके द्वारसे बलात् उठाकर मेरे हृदयके अन्तःप्रदेशमें अभिषिक्त कर दिया। रविवारका दिन था, प्रातःकालका समय। मैं अपने छोटे पुत्रको गोदमें लिये उसी ओर घूमने जा रहा था। खान साहबके मकानके सामने अचानक मेरा पैर फिसला और सम्भालने पर भी लल्लू गोदसे दूर जा गिरा।

मोतीने अपने आसनपर बैठे-बैठे लल्लूका गिरना देखा, उसका रोना सुनकर उसका भ्रातृ-प्रेम उमड पडा। वह उछलकर लल्लूके पास आया, उसे सूँघा और सान्त्वनाकी मनोहारी मुद्रामें उसके साथ खिलार

करने लगा । मानो कह रहा था–"उठो, रोओ मत, तुमने चींटीका बच्चा मार दिया है, उसकी माँ तुम्हे पीटेगी, जल्दी करो, वह आ रही है" ।

मैने लल्लूको चुमकार कर गोदमें ले लिया । मोतीने आँखमें हृदयकी सारी अतृप्त आकाङ्क्षा भरकर उसकी ओर देखा, दुम हिलाई–भो-भो-भो ! मानो कह रहा था, "लल्लू अब तुम्हारी-मेरी मित्रता हो गई है, मुझे भूल न जाना । कभी फिर भी दर्शन देना' ।

दूसरे दिन जब मै वहाँ पहुँचा, वह उछल कर मेरे पैरोंसे आ लिपटा, दुम हिलाने लगा, उसके चेहरेमे अपने मित्र लल्लूके दर्शनाकी उत्कट उत्कण्ठा झलक रही थी, जिसका अर्थ था–"मेरे प्यारे मित्रको कहाँ छोड आये ?" उसकी यह दैनिक दिनचर्या हो गई । मुझे कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि मोती मेरे आनेके समयकी प्रतीक्षा किया करता है ।

एक दिन सायकालके समय मे घूमकर उधरसे आ रहा था । अन्धेरा हो चला था, दीप जल चुके थे । मोतीने मुझे देखा, तो उछलकर मेरे पास आ पहुँचा, दुम हिलाकर खिलार करने लगा । मुझे घर पहुँचनेकी जल्दी थी, मैने उसे चुमकार कर हटाना चाहा, पर वह हटता ही न था । अपने आगेके दोनो पैर उसने उठाकर मेरे घुटनो पर रक्खे और खडा होकर दुम हिलाने लगा जैसे कोई सुकुमार शिशु अपने पिताकी गोदमें चढनेको उतावला हो रहा हो ।

मैने एक बार उसकी तरफ देखा और उसे गोदमे उठा लिया । सोचा, रास्तेमें थोडी दूर पर उतार दूँगा, चला आयेगा, पर मोती इसके लिए तैयार न था, वह मेरी गोदमे चिमटा-सा जा रहा था, जैसे उसमे छिप जाना चाहता हो । उसकी दशा इस समय उस पथिक-जैसी थी, जिसे जगलमे अचानक मोहरोका एक घडा मिल जाय, वह खुश होकर उसे उठा ले, गोदमें छुपाकर घरकी ओर दौडे, पर मार्गमे चोरो द्वारा उसके छिन जानेका आतुरभय निरन्तर बना रहे ।

उसकी यह दशा देखकर उसे गोदमें उतारनेका मुझे साहस न हुआ ?

गोदमे लिये-लिये घर आ पहुँचा। मोती लल्लूको देखते ही बेचैन हो उठा—उसका रोआँ-रोआँ खिल गया। गोदसे उछलकर वह लल्लूके पास जा पहुँचा। कभी उसे सूँघता, कभी उसके तलवे चाटता। उसकी सम्पूर्ण देह प्रेमके मधुर आवेगमें, पवन-परिचालित वन-वल्लरीकी भाँति काँप रही थी। उसे इस समय विश्वकी कुछ सुध-बुध न थी, उसका बिछुडा बालसखा बहुत दिनोंके बाद आज उसे मिल गया था।

बिछुडे हुए मित्रका मिलन, स्वर्गीय स्रोतस्विनीकी विमल प्रवाह-धारा है। इसका पुण्य-स्पर्श विरहकी ताप-ज्वाल-मालासे मूर्छित दो सुकुमार हृदय-वल्लरियोंको पुनः नवजीवन प्रदान कर विश्वमे सरसताका सचार कर देता है। प्रेम प्रसून खिल उठते है, पवन निष्काम देव-दूतकी भाँति अपने आँचलमे उस सुरभिका संकलन कर उसे विश्वमे बखेर देता है, द्वेषकी दुर्गन्धसे दूषित विश्वका तामसी हृदय-प्रदेश सुरभित हो उठता है। मित्र-मिलन सौभाग्यकी चरमसीमा है।

दूसरे दिन विद्यालय जाते समय मैंने उसे ले जानेका प्रयत्न किया, पर मोती इसके लिए तैयार न था। वह दौडकर लल्लूकी गोदमे जा छिपा। वियोग-भयकी कायरता उसकी आँखोमे तरल हो, बह रही थी। लल्लू भी उसे भेजनेमे सहमत न था।

घरमे मोतीकी आवश्यकता अब सिद्ध हो चुकी थी।

जो वस्तु हमारे पास नही है, हम उसकी उपयोगिता-आवश्यकताका यथार्थ अनुभव नही कर पाते, कभी-कभी औरोंको उसका उपयोग करते देख उसकी व्यर्थताका रोना रोने एव समयकी प्रगतिका बेसुरा राग अलापनेमे भी हम सकोच नही करते, पर जब वह वस्तु स्वय हमे प्राप्त हो जाती है, तो हम उसकी यथार्थ उपयोगिता-आवश्यकताका अनुभव करते है। इस अनुभवके बाद वह वस्तु हमारे लिए भी आवश्यक हो जाती है और हम उसका त्याग करनेमे कष्टका अनुभव करते है।

विश्व-बाजारके विकासका यही सक्षिप्त इतिहास है ।

इस घटनाके दो वर्ष बाद--

मोती अब युवक हो गया था । शैशवकी सरलताके स्थानमें यौवनकी गम्भीरता विलास करने लगी थी । उसका रग अब पहलेकी अपेक्षा निखर गया था । कृष्ण वर्ण, उन्नत ललाट, उसपर देदीप्यमान शुभ्र तिलक-चिह्न, उठी हुई दुम भरा हुआ बदन एव मथरा कद, उसकी सुन्दरताके उपकरण थे । जो देखता, उसकी ओर खिंच जाता सचमुच उसमें गजब का आकर्षण था ।

लल्लूकी तबियत इधर कई माससे खराब थी । मैं, लल्लू एव उसकी माता स्वास्थ्यसुधारके लिए मसूरी जा रहे थे । मोतीको यहीं छोड जानेका विचार था । हमने इसकी सूचना उसे नहीं दी थी, पर न जाने कैसे वह यह बात समझ गया था । इधर कई दिनोंसे वह अनमना-सा रहता, भोजन भी भरपेट न करता । उसकी प्रसन्नता भावी वियोगकी कल्पना-ज्वालामें झुलस-सी गई थी । मुझे जानेकी तैयारीमें इधर ध्यान देनेका अवकाश न मिला था, मेरी यह उपेक्षा उसके हृदयको और भी व्यथित कर रही थी ।

अन्तमें मसूरी जानेकी तिथि आ गई । हमें प्रात. ६॥ की गाडीसे यात्रा करनी थी, सामान बँधकर तैयार हुआ, ताँगा आ गया । मोती आकर मेरे पास खडा हो गया । उसका मुँह उतरा हुआ था । मैंने इसे गरमीका अनिवार्य फल समझा, उसकी कमर पर थपकी दी, प्यारसे सिरपर हाथ फेरा--"मोती ! हम जा रहे हैं, अच्छी तरह रहना । दु.खी न होना, हम जल्दी ही लौट आयेंगे ।"

मोतीके हृदयकी सचित व्यथा, उसके मुख-मण्डल पर झलक आई । उसने मेरी ओर देखा, आँखोंसे आँसू बह-से रहे थे । व्यथितहृदय विपत्तीके कुलिश-कठोर आघात वीरताके साथ सह सकता है, पर सहानुभूतिका एक हल्का-सा सस्पर्श उसे बलात् द्रवित कर देता है । हम अपना भरा हृदय लिये रुक्षता एवं परताकी रगभूमिमें प्रसन्नताका अभिनय करते

रहते है, पर सहानुभूतिकी एक हल्की-सी थपकी हृदयका बाँध भग्न कर देती है और वह आँसुओंकी भावमयी धाराके रूपमे प्रवाहित होने लगता है। सहानुभूतिमे भी एक आग है, जो हृदयकी व्यथाको पिघला देती है। उसकी कई दिनकी अन्यमनस्कताका अर्थ अब मेरी समझमे आया। मैंने उसे प्यारसे गोदमे ले लिया—"क्यो, दुखी क्यो होते हो मोती?"

उसने एक बार फिर करुणा-पूर्ण दृष्टिसे मेरी ओर देखा और अपना मुँह मेरी गोदमे छिपा लिया। मुझे उसके हृदयकी सम्पूर्ण करुण कथा उसके इस एक ही संकेतने स्पष्ट घोषित कर दी।

हृदयकी भाषा नि:शब्द है, पर निराकार नही। सम्पूर्णताकी दृष्टिसे तो विश्वकी कोई भाषा इसके साथ प्रतिस्पर्धा कर ही नही सकती। मुख-मुद्राएँ, विविध भाव-भंगियाँ ही उस भाषाकी लिपि है जो हृदयके भावोंको सम्पूर्ण सुन्दरताके साथ प्रकाशित करनेमे अपनी उपमा नही रखती। जिस भावको प्रकट करनेमे भाषाविद् अपनी अनेक पंक्तियोंका उपयोग करके भी सन्तुष्ट नही हो पाता, उसे आँखका एक सूक्ष्म संकेत बडी सुन्दरता के साथ प्रकट कर देता है। भग्न-हृदय से निकले नि:श्वासका अर्थ विश्वकी कौन भाषा शब्दोंमे गूँथ सकनेका दावा कर सकती है?

मोतीकी सहृदयता, द्रवित हो मेरी आँखोंमे आ झलकी। मैंने कहा—"मोती! तुम दुखी मत हो। यहाँ नही रहना चाहते; तो चलो तुम भी मसूरी चलो!" मोती कूदकर खडा हो गया—उसका अभीष्ट उसे मिल गया था। इसी समय मेरी बाई आँख फरकी। क्या यह किसी भावी अनिष्टकी पूर्वसूचना है? नवीनता हमे शकुनवादके इस मायाजालसे निकालकर वीर हृदय बनाना चाहती है, पर प्राचीन संस्कार इसीमे हमारा कल्याण देखते है। समयका प्रवाह नवीनताका पृष्ठपोषक है, पर हृदयका विश्वास संस्कार-बलको क्षीण नही होने देता। व्यक्तिगत अनुभूति सन्धिदूत की भाँति दोनोंमे समन्वय करनेका प्रयत्न कर रही है।

* * *

स्टेशन पहुँचे, बाम्बे एक्सप्रेस दूसरी लाइनपर खडी थी—मसूरी जानेवाली गाडीके आनेमें कुछ मिनटोंकी देर थी—दोनोंका यहीं क्रास होता था ।

सामान प्लेटफार्मपर रखा, मैं टिकट लेने चला, मोती लाइन पारकर एक्सप्रेस गाडीका निरीक्षण करने लगा ।

कौन जानता था यह निरीक्षण मृत्युका भ्रान्ति-भरा आह्वान है । हमारी गाडी आई, मैं उसका शब्द सुन जल्दी-जल्दी टिकट-घरसे निकला । दरवाजेपर पैर रखते ही मेरा हृदय मग्न हो गया—इजन अपनी अबाध गतिसे दौडा आ रहा था, उसका 'पखा' किसी कृष्णकाय निशाचरकी भीषण दन्त-पक्तिकी भाँति आगेको निकला हुआ था और मोती घबराया हुआ लाइन पारकर इधर दौडा आ रहा था, जैसे कोई भक्त शैतानके प्रकोपसे बचकर भगवान्‌की शरण जा रहा हो ।

इजनने मोतीको एक टक्कर दी, वह दूर जा गिरा ।

मैं विह्वलताके उन्मादी आवेशमें चिल्ला उठा—"मोती ! इधर मत आओ, वहीं रहो, ठहरो !!"

मेरी आवाज मोतीने सुनी, उसकी मिलन-उत्कण्ठा और भी उग्र हो उठी । उसने देखा—हमारे और उसके बीच एक पहाड सा दौडा जा रहा है । वियोग उसके लिए असह्य हो उठा, वह पहियोंके मध्यावकाशसे एक ही कुलाँचमें इधर आनेका निश्चयकर फिर दौडा । पलभरमें गाडीका पहिया उसके ऊपर से उतर गया, देह दो भागोंमें विभक्त हो, तडफने लगी ।

गाडी ठहरी, मैं दौडकर मोतीके पास गया । आँखे बन्द थीं, प्राण जा ही रहे थे । मैंने जोरसे पुकारा—'मोती !' उसकी चेतना अभी अस्त न हुई थी । मोतीने आँखे खोलीं, मुझे सामने देखकर प्रसन्नताकी एक रेखा उसके मुख-मण्डलपर बिखर गई । यह उषाकालिक दीप-शिखाका अन्तिम प्रज्वाल था । वह अपने भग्न शरीरका सारा बल आत्म-बलके

साथ मिलाकर—आगेके दोनो पैरोंके सहारे खडा हो गया, हृदयका प्रेम प्रकट करनेके लिए उसने दुम हिलानेका प्रयत्न किया, पर हाय, हृदय-हीन गाडीके राक्षसी चक्रने हृदयसे दुमका सम्बन्ध विच्छेद कर दिया था ! मोतीको अब अपनी दशाका ध्यान आया, मृत्यु अपने विक-राल रूपमे उसके सामने अट्टहास कर उठी, उसने एक अवर्णनीय भावसे मेरी ओर देखा, मानो कह रहा था—"बाबूजी ! मै आपसे विदा हो रहा हूँ, मुझे भूल न जाना !"

प्राण-ज्योति क्षीण हो चली, उसकी वह उन्नत अर्ध देह धराशायी हो, जगकी क्षण-भङ्गुरता उद्घोषित करने लगी ।

मेरा हृदय तडफ उठा, ऑखोसे ऑसुओकी अजस्र धारा बहने लगी । हाय, मेरे मोतीका यह अन्त ! मैने मसूरी जाना स्थगित कर दिया ।

* * *

मोतीका शव मै उठवा लाया और अपने विद्यालयके पास ही उसे दफनाकर, उसकी समाधिपर मैने मिट्टीमे ॲगलीसे लिख दिया—'मोती एक स्वर्गीय सुमन था, सन्तोषकी आलोकमालासे उज्ज्वल एव स्नेहके सुभग सौरभसे सुरभित । वह प्रेमकी बलिवेदीपर अपना निष्काम, सात्त्विक एव पवित्र बलिदानकर अपना जीवन धन्य कर गया ।'

हवाके झोको और वर्षाके थपेडोने इस स्मृति-लेखको कुछ ही दिनो मे चाट लिया और अब तो उसकी समाधिके चिह्न भी समाप्त हो गये, पर मोतीकी स्मृति एक मीठी कसकके रूपमे आज भी जीवित है और मै अक्सर सोचा करता हूँ—बहुतोसे मै बिछडा हूँ, बहुतेरे मुझसे बिछडे है ! बिछोहके ऑसू भी मैने देखे है और चोट भी अनुभव की है, पर ऐसा तो जीवनमे सिर्फ मोती ही है, जो बिछोहके आते ही बलि हो गया और जिसने मेरे बिछोहमे जीनेसे साफ इनकार कर दिया !

पहाड़की उन चोटियोंसे नीचे !

"बुधारू, बुधारू, अबे हमारे गोरू अभी तक क्यों छानीमें बन्द हैं ? तू तो नवाब है ही, पर वे तेरे बच्चे भी आज कहाँ मर गये, जो कामपर नहीं आये ?"

"ठाकुरा, मेरे बच्चोंकी माँ बीमार है, उसके बचनेकी कोई उम्मीद नहीं।"

सर्दीमें सुकड़ते बुधारूने इतना कहा कि उसका गला रूँध गया और वह ठाकुराके पैरोंपर गिर पड़ा, पर ठाकुराने इधर ध्यान न दिया। उसे अभी अपनी बात पूरी करनी थी। वह उभर कर बोला—"बुधारू, आज तेरे बच्चोंकी माँ बीमार है, कल तेरे बच्चे मरने लगेंगे, भला मैं इसमें क्या करूँ ?"

गरीबमें अपमानके पैनेपनकी परख खूब होती है, पर परिस्थितियाँ उसे इस परखको पीना सिखा देती हैं। बुधारू भी अपने बच्चोंके अमंगलकी बात पी गया। उसे अभी अपनी बात पूरी करनी थी।

"ठाकुरा, बरफकी इन आँधियोंमें न पैरोंमें जूती है, न देहपर कपड़ा, पर यह तो रोजकी ही बात है। आज तो घरमें न बच्चोंके खानेको दो टुकड़े हैं, न उस कंकालके लिए दवा।" पैरोंपर पड़े ही पड़े बुधारूने कहा।

ठाकुराका हृदय पिघला नहीं। घरमें बुनी मोटी ऊनी जुराब और गाँवमें बनी मजबूत जूतीसे सुरक्षित पैरसे बुधारूके मस्तकको हटाते हुए उसने कहा—"मैं तुम्हारी तकलीफोंका ठेकेदार नहीं। मैंने तो अपनी अण्टीका रुपया फेंककर तुम्हें खरीदकर गुलाम बनाया है। इसपर भी तुम्हें खाना

कपड़ा देता हूँ। बदलेमें तुम यह जरा-सा काम भी करना नहीं चाहते, तो मुझे ५०० रुपये अदा कर दो।"

बुधारू ठण्डी साँस लेकर उठा और कुछ देर आकाशकी ओर सूनी आँखोंसे देखकर, जानवरोंको धूपमें बाँधने चला गया।

खूराक और दवा न मिलनेके कारण बुधारूकी स्त्री मर गई और कुछ दिन बाद बच्चे भी चल बसे।

स्त्री और बच्चोंको गुजरे एक साल बीत गया। बुधारू हमेशाकी तरह अब भी सुबह ही काम पर जुट जाता है। घरका पूरा काम, पहाड़ काटना, खेत बनाना, जानवरोंका चारा-पानी करना, सब कुछ गई रात तक करता रहता है। उसे सालमें एक बार सस्ती जोड़ीका दो जोड़ा कपड़ा पहननेको मिलता है और खानेको सुबह एक मडवेकी रोटी, एक कठेरी पानी मिला सफेद रंगका मट्ठा। दोपहरको मकीका सत्तू और उबली हुई अरवी। रात गये, फिर दो मडवेकी रोटियाँ और पानीदार पतली दाल। इसके अलावा कभी त्रिम्मुके मेलेपर दूसरा अन्न मिल जाये, तो वह उसे ईश्वरकी माया ही समझता है।

बुधारू मशीनकी तरह काम करता रहता है और बुदबुदाता रहता है। उसके दिलकी कसक मुँह पर पड़ी झाइयों और निशानोंसे साफ झलकती है। अब उसके जीवनमें अन्धेरा ही अन्धेरा रह गया है और देह उसकी लटक कर कंकाल हो गई है। गयी रात कभी-कभी वह अपने साथी पुनियाके घर आता है। अलावके आगे दोनों एक दूसरेसे पूछते रहते हैं कि हम लोगोंका क्या होगा। न तनपर कपड़ा, न पेटभर अन्न। सुबहसे सन्ध्या तक हम काम करते हैं। ढेरका ढेर ठाकुर नीचेसे सोना ले आता है और हमें यह सस्ती जोड़ी और मडवेकी रोटी मिलती है। दोनों फिर चुप हो जाते हैं। सिर डाले-डाले सोचते रहते हैं। दोनों बन्द पिंजरेमें पक्षीकी तरह फड़फड़ाकर रह जाते हैं, उड़ नहीं पाते।

यो ही कुछ महीने आये—चले गये। एक सवेरे लोगोंने देखा, पुनिया चौतरेपर बैठा है और बुवारू अपनी भाषामे जोर-जोरसे बोल रहा है—

"हम कोल्टे, डूमडे, बाजगी सब इस देशके निवासी है। हम ३०० वर्ष पूर्व इस देशके पूर्ण रूपसे मालिक थे। औरंगजेबके समयमे नीचेसे लोग भागकर आये। वे चालाक थे। पढे-लिखे थे। बहला-फुसला-कर हम सीधे लोगोसे हमारे खेत, गोरू, मकान उन्होंने सब ले लिये और आश्वासन दिया कि हम तुम्हे खानेको देगे।

हमारे बडे इन चालोको नहीं जानते थे और आज हम पीढी दर पीढी दास है। हमने मेहनतसे पहाड काटे, गोडे, खेत बनाये, हमने इनमे पैदा किया और आज हम इस पृथ्वीसे कुछ नहीं ले सकते। हन सुबहसे रात तक काम करते है। फिर भी न तन ढाकनेको कपडा है और न पेट भर अन्न। हमारे बच्चे मोरीके कीडेकी तरह बिलबिलाते रहते है। हमारी ये देवियाँ अपने सपनोमे सब कुछ लेकर, अपना घर छोडकर, हमारे पास आती है ओर हम इन्हे सब कुछमेसे "कुछ-कुछ" भी नहीं दे सकते। हम लोगोने कभी सोचा है ऐसा क्या है? एक ही ईश्वरके बनाये हुए हम लोग इस तरह असहाय और अपाहिज क्यो है? हमारा यह जीवन ऐसा क्यो है?

हम लोग आपसमे मिल न ले, इसलिए ये ठाकुर हमे न पेटभर खाना देते है, न कपडा। ये चाहते है कि हम अपने कामोमे ही उलझे रहे ओर उसी तरह पडे रहे। हम लोगोको इस अत्याचारको मिटाना है। चाहे हम लोगोको कितना ही कष्ट झेलना पडे। हमे अपने लिए नहीं तो इन छोटे-छोटे बच्चोके लिए जो कलीकी तरह है, जो खिलनेसे पहले ही मुरझा जायेगे, इनके लिए ही कुछ करना है। हम सभी वीर है, साहसी है, दृढ है। हमारी वीरताका, दृढताका नमूना ये बडे-बडे खेत है, जो

ढेरो सोना उगलते हैं। ऊँचे-ऊँचे मकान हैं जिनमें रंगरेलियां होती हैं और ये ठाकुरा हैं जो हमारे ही बलपर सब कुछ करते हैं और हमें इशारो पर नचाते हैं।"

बुधारूका चेहरा आज लाल हो रहा था। सीना उभर-उभर आ रहा था। उसने अपनी गर्दनको, जिसकी नसें फूली हुई थी, ऊँचाकर चारो ओर देखा। फिर बोला—"सोचते क्या हो, चुप क्यो हो! क्या तुम लोग सोचते हो कि कुछ न हो सकेगा? जिन्दगी न बन सकेगी? लेकिन यह याद रक्खो कि इस तरह बेकार पडे रहना, कुछ दिन भले ही अच्छा लगे, हमेशाके लिए अच्छा नही हो सकता। यह ऐसी चक्की है, जो चलती ही रहेगी और एक दिन वह होगा कि इसमें हमारी हस्ती ही पिस जायेगी। तब क्या करोगे?"

पुनिया चौतरेसे उछलकर उठा। उसने चिल्लाकर लोगोंसे कहा—"बुधारू जो कहता है वह काली माताके आशीर्वादका फल है। हम लोगो-को बुधारूके साथ रहना चाहिए।" लोगोंमे आग तो दबी हुई पडी थी, केवल कुरेदनेकी देर थी। लोगोंने देखा कि बुधारू ही अकेला नही है, पुनिया भी साथ है। जै काली माता, जै काली माता, करते हुए वे लोग मन्दिरपर पहुँचे और सौगन्ध खाई। गाँवमे एक हलचल मच गई। ठाकुरा लोग इधरसे आते, उधर निकल जाते। रास्तेमें देखकर न कोई एक किनारे खडा होता, न सर झुकाता। ठाकुरोने देखा कि बात बिगड गई है और उसकी जड बुधारू और पुनिया है।

बुधारू और उसका साथी पुनिया, जिन्होने भारतके पहाडी प्रदेश जौनसार बावरमें जीवनके नये अध्यायको जन्म दिया, एक अन्धेरी रातमे ठाकुरो द्वारा पहाडकी चोटीसे हाथ-पैर बाँध, नीचे फेंक दिये गये। वे मर गये और पर्वतके जीवजन्तुओंने उनका शव-संस्कार कर दिया, पर उन्होने जीवनकी जो आग जला दी थी, वह जलती रही और अभी तब

तक जलती रहेगी जब तक इस प्रदेशकी गरीब और असहाय जनता मानवताके सम्पूर्ण अधिकार न पा लेगी।

जौनसार बावरकी अन्धेरी कन्दराओंमें अपनी हड्डियोंकी मशाल जलानेवाले शहीद बुधारू और पुनिया आज भी अबोध जनताकी लोकोक्तियोंमें अमर हैं। पर यह अमरता, क्या भव्य स्मारकोंकी अमरतासे अधिक हार्दिक नहीं है?

शहादतकी ज़िन्दगीके तूफ़ानमें !

मैंने अपने जीवनमें बहुत कुछ देखा है और बार-बार देखा है, पर किसी नारीमें मैंने बस्तूरबा-जैसा पत्नीत्व, सरोजिनी नायडू-जैसा कवित्व, विजयालक्ष्मी पण्डित-जैसा व्यक्तित्व, रमारानी जैन-जैसा व्यवस्थापकत्व और सत्यवती जैसा वीरत्व नहीं देखा।

दिल्लीके अहिंसात्मक युद्धकी वह सिपहसालार थी और गांधीजी उसकी जिन्दगीके सिपहसालार थे—उनके प्रति उसकी आस्था-निष्ठा इतनी गहन-गम्भीर थी कि वह उनके संकेतपर किसी भी क्षण अपने प्राण एक कणकी तरह दे सकती थी। सच तो यह है कि यों कहकर मैं उसका अपमान ही कर रहा हूँ, क्योंकि वह उन सिपाहियोंमें नहीं थी, जो जीवनदानके लिए तैयार होकर युद्धके आंगनमें उतरते हैं, वह तो उनमें थी, जो जीवनदान देकर ही युद्धकी ओर चलते हैं।

मुझे कभी नहीं लगा कि उसका लगाव कहीं भी, किसी अंशमें भी, उसके प्राणोंके साथ है, जीवनके साथ है। गांधीजीकी पताकाके नीचे आनेसे पहले ही वह अपना जीवन देशके लिए समर्पित कर चुकी थी। यही कारण था कि वह सिपहसालार होकर भी सिपाही थी—सेनापतिके दम्भसे दूर और सैनिकके समर्पणसे ओतप्रोत। सचमुच मरणकी शहादत नहीं, शहादतका जीवन ही उसकी जिन्दगी थी।

अन्तर्दर्शी युगपुरुषकी वह लाडली थी और एक दिन लाडमें डूबकर ही गांधीजीने उसे 'तूफानी' की उपाधि दी थी। उस युगके रायबहादुर और इस युगके पद्मभूषण, दोनोंसे निराली थी उसकी यह उपाधि। इस उपाधिके साथ यह प्रमाणपत्र भी—"वह सचमुच तूफानी है। सारी जिन्दगी वह तूफानकी तरह जबर्दस्त रही है और मरते दम तक भी वह

तूफानी ही रहेगी।" गाँधीजीकी भविष्यवाणी अक्षरशः सच निकली और वह मौतके साथ अठखेलियाँ करती, उसपर व्यंग कसती और उससे ठोकरों खेलती इस दुनियासे यों गई कि आदमी मौतके भयपर शरम खाये।

१९३० के तूफानी दिन थे। आजादीका नशा दिल-दिमागपर छाया हुआ था। सुबह, दोपहर, शाम, रात टक्कर ही टक्कर और चक्कर ही चक्कर। जेलें गरमा रही थीं और हथकडियाँ हाथोंके आस-पास ही आँख-मिचौनी खेल रही थीं। मनमें आया कि तालाबकी क्या गुचक और शान्तसरिताकी लहरोंमें क्या तैरना, बाढमें तैरूँ, तो कुछ लुत्फ है। बस एक कान्फ्रेसकी योजना की और मुख्य वक्ताके रूपमें श्री आसफअली को निमत्रण देने दिल्ली गया।

भाग्यकी बात, डाक्टर असारीके बगलेपर उसी दिन महामना मालवीयजी सहित काग्रेसकी पूरी कार्यकारिणी पकडी गई और आसफ-अली साहबके लिए वचन देना कठिन हो गया। बोले—"तुम सत्यवतीसे तै कर लो, वह जरूर चली जायँगी।"

मैंने निराश होकर कहा—"मैं इस कान्फ्रेसमें ऐसी आग बरसाना चाहता हूँ, जो मेरी गिरफ्तारीके बाद भी तहसील गरम रखे भाई साहब!"

अपनी मीठी मुसकराहटमें बोले—"तो सत्यवती एकदम ठीक है। तुम जानते नहीं, वह तो जीती-जागती होलिका है।"

मैं उनसे मिला। लम्बी भरी देह, दिपता, तपता चेहरा, मोटा हाड, मजबूत कदम, कडकती आवाज और मीठा व्यवहार। बोलीं—"दमनका पहिया तेजीसे घूम रहा है। प्रचार अब बहुत हो चुका। कान्फ्रेसोंके झमेलेमें मत पडो। इन कान्फ्रेसोंसे सरकारको एक ही जगह अनेक शेर मिल जाते है। अब तो जो जहाँ है, वहीं धडल्लेसे आग लगाता रहे।"

मुझे उस नारीके चारों ओर क्रान्तिके गरम वातावरणका स्पर्श अनु-भव हुआ और मैंने सोचा—"यह जोशमें भडककर जेल चली जानेवाली

स्वयसेविका नही है, यह तो विप्लवके नक्शे बनाकर कदम उठानेवाली वीर बाला है।" उठते-उठते उसने कहा—"धनियोंके चन्दोपर रौनक करनेवाली कान्फ्रेंसोका मोह छोडो मेरे भाई, गरीबोमे घुस जाओ, किसानोको उठाओ, मजदूरोको जगाओ।"

और तब ले आई वे मेरे लिए नाश्ता और बोली—"जेल जाना जरूरी है, पर इसे ही सब कुछ मत समझो। मुख्य बात है गरीबोको यह समझाना कि वे गरीब क्यो है, असहाय क्यो है और क्या कर सकते है?"

उस युगमे इस तरहकी बात सोचना एक आदर्श ही था, पर अगले १५ वर्षोमे उन्हे समीपसे देखकर मैने सोचा है—सत्यवती एक तैराक नही, गोताखोर थी—तलगामी, तलस्पर्शी, अतलदर्शी।

वह यो चलती कि हम झपटे, वह यो झपटती कि हम दौडे। ठीक ही वह जीती-जागती होलिका थी।

मैने ऐसे नेता देखे है, जो देशकी गुलामीके वर्णनसे जनताको रुला दे और ऐसे नेता देखे है, जो गुलामीके ज्ञानका म्यूजियम कहे जा सके, पर गुलामीकी जलन कलेजेमे महसूसकर, अपने एकान्तमे बिलखनेवाले जो थोडेसे साधक मैने देखे है, उन्हीमे एक थी—सत्यवती बहन।

एक वे होते है, जो बेड़ियोको निकाल डालना चाहते है, एक वे होते है, जो काट डालना चाहते है और एक वे होते है, जो उन्हे तोड डालना चाहते है—भले ही इसमे वे लहूलुहान हो जाये। इन्हीमे एक थी सत्यवती बहन।

वह उनमे नही थी, जो पहाडसे सिर फोडा करते है, पर वह उनमे थी, जो पहाड तोडकर सडक बना लेते है।

वह उनमे नही थी, जिनके जीवनमे देशभक्तिके भी सीजन आते है, वह उनमे थी, देशभक्ति ही जिनके जीवनकी सृजनभूमि होती है।

वे उनमे न थी, जिन्हे रज भी होता है, तो जरा आरामके साथ, वे उनमे थी, जिनका आरामके साथ कोई रिश्ता ही नही होता। विश्राम

मे उनका विश्वास नही था और समयसे नहाना-खाना उनके लिए शायद वर्जित ही था। एक धुन, भाग-दौड उनपर सदा सवार रहती और उस सवारीमे ही वे झूमा करती।

एक मुसीबतमे फँसा मै उनसे मिला, पर ऐ, रंग फीका पड गया है, गाल कुछ पिचक गये है, आँखे भी धसकती-सी और इन सबसे उनकी उठी हुई नाक और भौहे कुछ और भी उठी-उठी सी। वे अस्वस्थ। अब ऐसेमे अपनी बात क्या कहूँ उनसे, पर लीजिए कहलवा ली उन्होने मेरी बात। बोली—"यह तुम्हारी क्या बात है, यह तो मेरी ही बात है।"

एक आतमीय विश्रामके लिए उन्हें अपने मकानपर ले आये थे। वही मै उनसे मिला था। वे आ गये और लगे मुझे झाडने—"आप लोग इन्हे मारकर ही दम लेंगे!" बात यह थी कि हमारे जिलेकी राजनैतिक कान्फ्रेंस हो रही थी, मै स्वागताध्यक्ष था और उस देहातके लोगोसे वादा कर चुका था कि उसमे श्रीमती विजयालक्ष्मी पण्डित आयेगी, पर श्रीमती पण्डित बीमार हो गई—आना अब असम्भव था। जो मिलता, उनके आनेकी बात पूछता। मै कहता—आचार्य नरेन्द्रदेव आ रहे है और ' '', पर वह बीचमे टपक पडता—"देखिए, विजयालक्ष्मीको जरूर बुलाइये।" मै कहता—"हॉ, हॉ, वे भी आ रही है।" वह कहता—"हॉ, बस और कोई आये न आये, उन्हे जरूर बुलाइए।" जाने क्या हुआ, पूरे देहातमे यही हवा थी, पर विजयालक्ष्मीको लाऊँ कैसे?

मैंने सत्यवती बहनसे कहा था—"अब इज्जत बचानेका एक ही उपाय है कि आप विजयालक्ष्मी बनकर आये" और उनके मेजबान कह रहे थे—"आप लोग इन्हे मारकर ही दम लेंगे।"

सत्यवतीने आनेसे साफ इनकार कर दिया। मै सोच रहा था—अब देहातके लोग मेरा दम लेंगे, पर अपने मेजबानको चायके लिए भेजकर वे बोली—"मै सुबह ६ बजेकी गाडीमे चलकर १२॥ बजे सहारनपुर पहुँच जाऊँगी। तुम वहॉसे मुझे कान्फ्रेसमे ले जानेका प्रबन्ध

रखना। बस पहुँचते ही लैक्चर और तुरन्त वापसी। अब यहाँ इस बारेमें कुछ मत कहो।"

और सचमुच वे ठीक समय पर पहुँच गईं। मैंने उनका बहुत शानदार परिचय कराया कि न विजयालक्ष्मी कहा, न सत्यवती, पर लोग विजयालक्ष्मी ही समझे। वे खूब जमकर बोलीं। उन्होंने बीच-बीचमें खूब तड़खे लगाये और जनताने बार-बार विजयालक्ष्मीकी जयसे आकाश गुंजाया। जब लोग विजयालक्ष्मीकी जय बोलते, तो वे नम्रतासे हाथ जोड़ती और हम लोगोंकी ओर देखकर मुसकरातीं। लोगोंके उत्साहमें ज्वार आ जाता।

बादमें जब उन्हें धन्यवाद देने मैं दिल्ली गया, तो बोलीं—"कार्यकर्ता की इज्जत ही कांग्रेसकी शक्ति है। तुम्हारी बात बिगड जाती, तो उस इलाकेमें बरसों कांग्रेसके काम पर असर पडता।" मैं उनकी तरफ देखता रह गया—ओह न वे मेरे लिए गई थीं, न कान्फ्रेंसके लिए, वे तो अपनी कांग्रेसकी प्रतिष्ठाके लिए ही बीमारीमें उठ धाई थीं—कितनी गहरी थी उनकी यह निष्ठा!

निष्ठा मनकी शक्ति है, पर तनके अपने नियम हैं। तनको भूलकर वे मनमानी करती रहीं, तन गलता रहा। थकान और भूखसे हरारत हुई, हरारतसे प्लूरिसी और तीसरी बार प्लूरिसी ही हो गई टी० बी०। इसी दशामें आ गया ६ अगस्त १९४२। उन्होंने रेडियो पर गाँधीजी की गिरफ्तारी सुनी कि घरसे खिसकीं और वे खिसकीं कि पुलिस आई, पर वे तो अब फरार थीं।

ओह, फरारीके ये छह सप्ताह। सत्यवतीके कलेजेकी जो आग गाँधीके व्रत-बन्धनसे बारह वर्ष बँधी रही थी, वह खुल खेली और जाने कहाँ-कहाँका सीमेण्ट हो गया भुस और लोहा पानी। उसमें गजबकी संगठनशक्ति थी। पलक मारते उसने पटाखोंको बम बना दिया और वे धडाके हुए कि वायसरीगल लाजका कलेजा काँप-काँप गया।

और तब पहुँच गई वह सींखचोंके उस पारकी अपनी प्रिय दुनियामें, जिसे वह अपना 'शाही विश्राम गृह' कहा करती थीं। एक बार उन्होंने मुझसे कहा था—"जब बापू जेलमें होते हैं और मैं बाहर, तो मुझे लगता है कि मैं उनसे दूर हूँ, पर वे जेलमें हों और मैं भी जेलमें हूँ, तो लगता है मैं उनके साथ हूँ, भले ही मेरी जेल उनकी जेलसे लाख मील दूर हो।' तो अब वह गांधीजीके साथ थी। हायरे प्यार!

मन बगावतके नशेमें खुश-खुर्रम, पर तन टी० बी० से जर्जर—तेजीसे मृत्युकी ओर बढ़ता-भागता! सरकारी डाक्टरोंने सलाह दी—अब बचना असम्भव है और सरकारकी समझदारी जागी—"छोड़ दो इसे" पर हायरे शासकके भय और वाह रे सत्यवतीके आतंक—"यह घरमें पड़ी-पड़ी भी तूफानके गोले छोड़ती रहेगी।" विशेषज्ञोंने बीचकी राह निकाली और सत्यवतीको जेलके सींखचोंसे निकालकर लाहौरके गुलाब देवी अस्पतालमें नजरबन्द कर दिया गया—मुक्त भी, बन्दिनी भी!

सत्यवती मुक्तात्मा थी, बन्दी होना उसका व्रत था, पर यह मुक्त बन्दिनी क्या है? उसकी ठण्डी बगावत कसमसाई और उसने सरकारको कई खत लिखे, पर सरकार खामोश रही, तो वह गरम हो उठी।

यह है १० फरवरी १९४५. दिल्लीके दैनिकोंमें सत्यवती बहनका पत्र छपा है, जिसने नागरिकोंके हृदयकी धड़कनोंको प्यारके स्पन्दनसे भर दिया है और सरकारी क्षेत्रोंमें भूत नाच उठे हैं।

"प्यारी बहनो और भाइयो,

मैंने देहली आनेका फैसला कर लिया है। आप जानते हैं कि इंसानका अपने घर आना इंसानी हक है। यह हक कोई भी हुकूमत या इंसान नहीं छीन सकता। मैंने चीफ कमिश्नरको कई खत लिखे कि वे मुझपरसे अपनी गैरइंसानी पाबन्दियोंको हटा लें, नहीं तो मैं उनकी पाबन्दियोंको तोड़कर भी अपने घर जाऊँगी।

मैं इंसानी हकोंके लिए लड़ने वाली एक खिदमतगार हूँ। बावजूद

बीमार होनेके कारण मेरा दिल और जिस्म हकूमतकी धमकियोंका मुकाबला करनेको सदा ही तैयार और मजबूत है। मैं २५ फरवरीको देहली आ रही हूँ। मैं जानती हूँ कि शायद मुझे बीचमें ही रोक लिया जायगा और मैं आप तक न पहुँच सकूँगी, लेकिन मेरे दिलकी तडप और आवाजको आपतक पहुँचनेसे हकूमत नहीं रोक सकती।

मेरे साथियो! मैं आपसे एक अर्ज करना चाहती हूँ कि अगर आपका मुझसे कुछ भी स्नेह है, तो मेरे हिस्सेके कामको भी अपने कन्धों पर उठा लो। मेरे दिलकी एक ही आरजू, एक ही अभिलाषा और एक ही तमन्ना है और वह यही कि भारत आजाद हो। आजादीकी इस राहमें हम जितना भी बलिदान कर सकें, करें और हम तब तक चैनसे न बैठें, जब तक आजादी हासिल न कर लें।

आप अपनी बहनकी तडप और आवाजको कभी न भूलना। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि आपकी बहन अपने आखिरी स्वाँस तक भारतकी राष्ट्रीय शानको कायम रखेगी। मेरे स्नेह भरे नमस्कार।"

लाहौरके प्लेटफार्मने बहुतसे दृश्य देखे हैं, पर अपने पाससे गुजरती रेलोंसे वह कहा करता है कि वैसा दृश्य उसने कभी नहीं देखा। लाहौरसे देहली जाने वाली ट्रेन, सी० आई० डी० और पुलिसके अफसरों की भीड विस्मय-विमुग्ध, तो साथी-सहचर करुण-कम्पित, टी० बी० से जर्जर और इस समय भी १०४ डिग्रीके बुखारसे परितप्त सत्यवती, दबग, दीप्त, उल्लसित, निर्लिप्त! कहनेको अस्पतालसे घर जा रही, पर कौन नहीं जानता कि यह है मरण-प्रयाण, यह है अन्तिम दर्शन!

शाहदरा पर गाडी रुकी, तो पुलिस अफसर डब्बेमें आये, बागी-विद्रोहीको गिरफ्तार करने, पर डब्बेमें बागी कहाँ है? यहाँ तो है क्षयके ज्वर, थकान और विचारोंकी उत्तेजनासे श्रान्त एक मा, एक बहन, मुसकराती कहती--"मैं ठीक हूँ, आप अपना काम कीजिये। आपका इसमें कोई कुसूर नहीं, बडोंके हुक्मकी तामील ही आपका काम है।"

देहलीके टी० बी० अस्पतालमे उन्हे रखा गया। वही मै मिला उनसे अन्तिम बार। कहॉ वह १५ साल पहली जाटनी, कहॉ यह कंकाल, पर दिलमे वही करक, तो विचारोमे वही कडक—"मेरे प्यारे भाई, सिपाही का मरना क्या, जीना क्या? मरना भी यह, जीना भी यह कि उसका सिर न झुके। मै जा रही हूॅ, पर मै देख रही हूॅ कि भारतसे अंग्रेज भी जा रहा है। मैने अपना काम किया है, सबसे कह दो कि वे अपना काम करते रहे।"

दस दिन बाद दो अक्टूबरको, गाधी-जयन्तीके दिन उसका जीवन पूर्ण हो गया। अंतिम क्षणो तक वह जागरूक रही निर्भीक, निर्मम, निर्लिप्त, अश्रान्त, अक्लान्त, कर्मयोगिनी।

सक्षेपमे अहिंसक बलिदान-माला का दीप्तिमान् सुमेरु सत्यवती बहन!

अखण्ड भारतकी ब्रह्म वेलामें !

सर्वसमर्थ अंग्रेज अपनी डेढ़ शताब्दीकी दिग्दिगत-व्यापी शासक-सत्ताको एक मामूली चटाईकी तरह लपेटकर १५ अगस्त १६४७ को भारतसे यों चले गये कि जैसे वे यहाँ थे ही नहीं यह इतिहास का आश्चर्य है।

हाँ, इतिहासका आश्चर्य और इस आश्चर्यका आश्चर्य है यह कि वे गये, तो बस गये ही, फिर लौटकर नहीं आये। क्या सोचा था बेचारोंने और क्या हो गया?

क्या सोचा था? दो महायुद्धोंने बूढ़े ब्रिटिश सिंहको थका दिया था और उसमें क्रान्तिभावनासे उफनते भारतको बलपूर्वक बसमें रखनेकी शक्ति न थी। उसकी सूझ-बूझने कहा, इसे मैं अब यों काबू करूँगा कि इतिहास अपनी उदारताका सेहरा मेरे सिर बाँधे और स्वार्थोंकी पूर्ति को कोई आँच न आये—मजा यह कि कोई उत्तरदायित्व भी अपने कन्धो न हो श्रेय भी मिले, प्रेय भी न छूटे!

उसने सोचा—स्वतन्त्रताकी घोषणा होते ही पाकिस्तानके जिलो पर कब्जा रखने वाले अंग्रेज अफसर हिन्दू कत्ले आम करायेंगे और लाखो हिन्दू भागकर पहुँचेंगे भारत। प्रतिक्रियामें वहाँ भी होगा मुस्लिम कत्ले आम और लाखों मुसलमान उखड़ेंगे—भागेंगे और जब भारत सरकार इस भगदड़में अस्तव्यस्त होगी, तब फटेंगे वे महाबम, जिन्हे हमने १०० वर्षों मे पाला-पोसा है।

हैदराबादकी महाशक्ति अपनी स्वतन्त्रताकी घोषणा करेगी, तो जूनागढ़ आजादीका ऐलान। भरतपुरका जाट राजा जाटस्तान का झण्डा फहराएगा, तो जोधपुरका राजपूत नरेश राजस्तानका नारा देगा!

पटियालामें स्वतन्त्र सिखिस्तानकी जय बुलेगी, तो दक्षिण भारत द्राविडिस्तानकी पताका उड़ाएगा। त्रावणकोर क्यों चूकेगा और ग्वालियर, बड़ौदा एवं इन्दौरके मराठे क्या खामोश रहेंगे? अनुभवहीन भारत सरकार जब तक इधर ध्यान दे, काश्मीरमें तूफानकी तरह कबायली चढ़ आयेंगे और घबराई भारत सरकार अंग्रेजोंसे मदद माँगनेको मजबूर हो जायगी। बस पञ्च बनकर वे आ बैठेंगे और ऐसा चक्र घुमायेंगे कि भारत टुकड़ोंमें बटकर यूरोपके बालकन राज्योंकी तरह सदाको अंग्रेजोंका आश्रित हो जायगा—स्वतंत्र होकर भी कठपुतली !

भारत स्वतन्त्र हुआ कि जूनागढ़के नवाबने पाकिस्तानमें मिल जानेकी घोषणा कर दी, त्रावणकोरने बगावतका झण्डा फहरा दिया, काश्मीर पर कबायली चढ़ दौड़े, हैदराबादने आजादीका नाग पूरे जोरसे उड़ा दिया और दोनों ओर अशान्ति मच गई।

भारतके नेताओंने अद्भुत इच्छाशक्तिका परिचय दिया। गांधीजीके बलिदानने देशमें शान्ति स्थापित की, तो नेहरूके व्यक्तित्वने सेनाकी निष्ठाको बनाये रखा और सरदारकी शक्तिने जूनागढ़को तोड़ा, तो त्रावनकोरको झुकाया और उड़ीसाके राज्योंको भारतमें मिलाकर अखण्ड भारतकी नींव रख दी। वीर सेनापति करिअप्पाके नेतृत्वमें भारतीय सेनाने काश्मीरमें पाकिस्तानियोंके छक्के छुड़ा दिये और इस तरह भारतीय जनताका उखड़ता आत्मविश्वास जगाकर अंग्रेजोंके मनसूबे धूलमें मिला दिये, पर हैदराबाद पूरे जोरों में था और यही नहीं कि उसे भारतकी सार्वभौम सत्ता स्वीकार न थी, उसका डिक्टेटर कासिमरिजवी दिल्लीके लाल किले पर हैदराबादी झण्डा फहरानेकी घोषणा कर रहा था। सच तो यह है कि हैदराबादमें स्वतन्त्र भारत और अंग्रेजी मनसूबेके भाग्यकी अंतिम परीक्षा हो रही थी।

निजामके धनसे पालित डिक्टेटर कासिमरिजवीकी भारत-विरोधी

आवाज इतनी प्रचण्ड और हत्यारी थी कि भारत-भक्ति की आवाज भी वहाँ असम्भव थी प्रयत्नोकी चर्चा तो एक पागलपन ही है। भारतके महान् भविष्य और भयकर सर्वनाशके बीच एक भाग्य-निर्णायक मोर्चा लगा हुआ था।

मोर्चे पर सेनापतिके आदेशके सहारे अपनी टुकडीके साथ बढ जाना आसान है, पर स्वय सेनापति, स्वय साथी और स्वय सैनिक बनकर कदम बढाना किसी बिरलेके लिए ही सम्भव है। हैदराबादके दैनिक 'इमरोज' का सम्पादक शोइबुल्ला खान भारतमाताका एक ऐसा ही विरला पुत्र था।

वह एक वर्चस्वी पत्रकार था और उम्र पाता, तो उर्दूकी पत्रकार-कलाका गणेश शंकर विद्यार्थी होता, उसे एक नया मोड दे पाता। उसकी पत्रकारिताका फूल उसकी विद्वत्ताके सुनहरे गमलेमे न खिला था, वह खिला था उसके कलेजेकी आगमे—हाँ, आगका फूल ही थी उसकी पत्रकारिता। कवि दिनकरकी एक पक्ति है—'मूक है सबसे बडी आवाज़।' शोइबुल्लाकी विशेपता उस कलाकारमे न थी, जो सबसे निराली बात, सबसे निराली भाषामे कहता है। उसकी विशेपता इसमे थी कि साम्राज्य-लोलुप निजामके फरमानो, उसके डिक्टेटर कासिमरिजवीकी राक्षसी हुकारो और दैत्यवृत्ति रजाकारोकी आतंक भरी कारस्तानियोके नीचे जनगणकी जो आवाज दबा दी गई थी, वह अपने लेखोमे उसे जनताकी भाषामे उभारता था, उबारता था। हाँ, वह उस सबसे बडी आवाजकी मूकता को वाणी देता था और कहूँ कि वह पत्रकारिताका प्रह्लाद था। प्रह्लाद, जो लोहेके जलते खम्भको भी हँसते-हँसते लिपटनेको प्रस्तुत रहे।

निजाम भारतके धनपतियोमे नहीं, विश्वके धनकुबेरोमे है। टूटी मोटरमे चढकर और मरम्मती कपडे पहनकर जो धन उसने पाई-पाई जोडा था, उसे वह अब बखेर रहा था। सौ-हजार नहीं, लाखो-करोडोमे वह

सोच रहा था आजकल और शोखकी कलमको खरीदनेके लिए ५-७ लाख रुपये फेंक देना उसके लिए मामूली बात थी। अपने रूपकी रश्मियाँ बखेरती थैलियाँ उसकी कलमके चारों ओर छमछमाईं। इन रश्मियोंमें कोठी थी, कार थी, शानदार प्रेस था, चमकता दैनिक था, मोटी पासबुक थी, जीवनका वैभव था। उसने अपना भरा अग्रलेख लिखते-लिखते एक बार इन थैलियोंकी तरफ देखा और मुसकराकर वह फिर लिखने लगा। ओह, यह मीठी-पैनी मुसकराहट कि थैलियाँ शरमाकर सामनेसे हट गईं।

तब उसे पढ़ाया गया—हैदराबादकी आजादीका मसला इस्लामकी इज्जतका मसला है। कन्याकुमारीसे कराची तक चाँद-सितारोंका परचम फहराए, क्या यह सुनहरा सपना तुम्हें दिखाई नहीं देता? तुम आज इसमें मदद दो, तो कल इसकी एक ताकत होगे। हाँ, एक ताकत, एक गौरव!

शोख जरा तीखा हो उठा था—इस्लामका नाम मत लो। वह मेरे विश्वासोंकी आतमा है, उसे देशके साथ की जा रही गद्दारीसे मत जोड़ो और याद रखो, मुझे न मुल्ककी चाह है न किसी हुकूमतका ऊँचा पाया बननेकी। मैं सचाईका एक अदना खादिम हूँ और इसीमें अपनी सबसे बड़ी शान समझता हूँ।

सुनकर उनके मुँह उतर गये, जो उमंग होकर उस तक आये थे और तब शासनका दर्प अपनी पर आ गया। कासिमरिजवीने अपने भाषणमें गरज कर घोषणा की, "मैं जानता हूँ यहाँ भी गद्दार हैं, पर मैं उनसे नहीं डरता और न मुझे उनकी परवाह है। मैं अबतक बर्दाश्त करता रहा कि हर सिरफिरा राह पर आये, पर अब मैं हर उस हाथको काट दूँगा, जो आसफिया हुकूमतके खिलाफ उठेगा।

शोयबके दोस्त चौंक उठे थे, उसे उन्होंने सावधान किया था—'और कुछ नहीं तो यह मकान ही बदल लो—सावधान रहनेमें क्या हर्ज है।' शोयब खतरेसे क्या बेखबर था? ना, वह बेखबर नहीं, बेखौफ

गा ! उसने कहा था—"दोस्तो, मैं मर नहीं सकता, शहीद हो सकता हूँ। घबराओ मत और जो होना है वही होने दो। मैं अपनी प्यारी भारत-माताके लिए कलमसे लड रहा हूँ पर उनमें नहीं हूँ, जो सर कलम होने का वक्त आने पर कलम रख देते है ?"

राष्ट्रकवि रवीन्द्रनाथका एक गीत है—'एकला चलो, एकला चलो, एकला चलो रे !" शोइब सत्यके कँटीले मार्ग पर एकला चला जा रहा था, अपनी आस्थाके बल कॉटोको फूल माने। वह उनमें न था, जो परिस्थितियोंका रोना रो, बैठ जाते है। वह उनमें था, जो इकले दम मंजिल लेनेका विश्वास रखते है और बिना भूले, बिना भटके और बिना अटके अपनी राह चले चलते है।

आखिर शोइब किस नशेमें था ? एक तरफ हैदराबादकी पूरी राक्षसी ताकत और एक तरफ यह इकला तरुण ? उसके साहसकी शक्तिका आधार क्या था ?

वह शहादतके नशेमें चूर था ! उसके साथ सत्यनारायण थे, वह इकला कहाँ था ? और शक्तिका आधार ? वह आधार था उसका विश्वास—'शहादत कभी खाली नहीं जाती।'

यह है उसकी उछलती जवानीकी कहानी—निडर, निस्पृह, निर्द्वन्द, पर हॉ, उसके जन्मकी भी तो एक कहानी है—शुभशकुन-सी सम्भावनामय ! गान्धीजी रेलसे कहीं जा रहे थे और पुलिस इन्स्पैक्टर श्रीहबीबुल्ला खानकी बीचके एक स्टेशन पर ड्यूटी थी। गान्धीके बारे में उनकी जैसी-तैसी ही राय थी, पर देखा तो मुग्ध हो गये। शामको घर लौटे, तो सुना बेटा जन्मा है और उसे गोद लिया, तो भौंचक—एकदम गाधी, "अरे, यह तो एकदम गाधी है।" बडा होने पर भी वे कभी-कभी लाडमें कहा करते-शोइब गान्धी और सचमुच शोइबको गान्धीके रास्ते जाना था।

उस दिन रेडियोने गान्धीजीके बलिदान की खबर दी, तो शोइबकी ऑखें बरस पडीं। बहादुर बेटेकी बहादुर मॉने कहा—"अरे, तू इतनी

अच्छी मौत पर रोता है ?" जाने क्या सूझा शोईबको कि उठकर उसने माके कन्धे पकड़ लिये और भाव-विभोर होकर कहा—"अम्मी, मैं भी यों ही जाऊँ, तो तू रोयेगी तो नहीं ?"

और वह यों ही चला गया ! 'इमरोज' का अंक तैयार कर वह रात ढले प्रेससे उठा—साथमें उनके साले—पत्रके मैनेजर, पर वे अपने घरके पास ही थे कि उन्हें घेर लिया गया। सब कुछ सुनियोजित था कि पहले ही वारमें शोइबका दाहिना हाथ काट डाला गया और दूसरे वारमें बाँया हाथ। मैनेजर चिल्लाया, "शोईब भाईको बचाओ।" शोईबकी पत्नी और कुछ पड़ौसी बाहर आये, पर तबतक एक गोली पसलीके आरपार हो चुकी थी और एकने छातीको बींन्ध दिया था। तलवारका एक भरपूर हाथ सिरकी एक तरफ पड़ा था और सब जगहसे खूनके फव्वारे छूट रहे थे।

पत्नी का सहारा लिये वे घरमें आये—"तुमने हल्ला क्यों नहीं मचाया भला एक-दो को तो मैं ही बन्दूकसे ढेर कर देती ?" पूछा वीर पत्नीने, तो बोले शोईब—"मैं चिल्लाता, तो वे मुझे डरा हुआ समझते, पर न मैं डरा हूँ, न कभी डरूँगा।'

वे यों बोले, जैसे वे अपनी सामान्य स्थिति में हों और खेल-खेलमें कोई मामूली खरोंच खा गये हों।

मौतका जाल चारों ओर फैला हुआ था, पर सच कहूँ आकाशके तारे आश्चर्यसे देख रहे थे कि शोईब अब भी अपनी पूरी मौजमें थे—जैसे छुट्टीके दिनकी मौजमें हों। उन्होंने एक गिलास पानी पिया और पत्नीके हाथसे तीन पान खाये हाय, उनके हाथ अब कहाँ थे, पर वाह रे बहादुर, वाहरे मस्त कि इलायची लेना भी न भूला और कैसे खिले वे प्यार भरे पान कि पेरिसकी लाखों लिपिस्टिकें मात हो गईं!

यह आ गई पुलिस और यह ऐम्बुलेंस—चलो अस्पताल। यह है शहीद की विदाई—"रोना मत, किसीको रोने देना मत। मैं बचूँगा नहीं, पर रोकर

"मेरी बहादुरीको छोटा मत करना और मेरे बाद मेरे जो प्यारे-अजीज आएँ, उनसे पर्दा न करना !"

यह फटी धरती, यह चिरा आसमान, खबर सुनकर शोइबके बूढे माँ-बाप आये—बूढे माँ-बाप, जिन्होंने ११ बच्चोंको जन्म दिया और उनमेंसे १० को अपने हाथों धरतीकी गोद सुला दिया शोइब ही जिनकी एक आँख ! लोकभाषामें-एक आँखका क्या सुँआखा और एक पूतका क्या सपूता जाने कब फूट जाये, जाने कब रूठ जाये !

माँ बेहाल, तो बाप बेचैन, पर शोइब शान्त उसके पास जीवनके कुछ ही क्षण, उन्हे वह खोयेगा नहीं। बोला—"तीन गोलियाँ लगी है और चोट भी बहुत है, पर अब्बा, मैंने उफ नहीं की कि कातिल जान ले कि मैं एक बहादुर पठान हूँ।"

छोटी बच्ची और पत्नीको सम्भालनेकी बात बापसे कही कि ब्रह्म-वेलाका उदय हो आया—यह ब्रह्मवेला प्रभात की, यह ब्रह्मवेला अखण्ड भारतकी, जिसमें देशके जनगण जाग उठे और शहीद सो गया कि नये भारतका नया भाग्य सो न पाये !

शोइबके व्यक्तित्वकी विशिष्टता कहाँ है ? उसके जीवनकार्यमे ? घोर आतककी घडियोंमे भी स्थिर रहने मे ? ना, सहारके बाद और मृत्युसे पूर्व इन तीन घण्टोंके अजेय सन्तुलनमे, अजेय धैर्यमे, अजेय विश्वासमे और अडिग सहिष्णुतामे--यो भी कि साहससे जीनेमे और शानसे मरने मे !

पोस्टमार्टमके बाद शोइब भाई फिर अपने घरपर—शोइब भाई, यानी उनका शव। अब भी घावोंसे खून चू रहा, पर चेहरा इतना शान्त कि कहीं भी कष्टके अनुभवकी सिकुड़न नही और पान रचे खूब सूरत होठों पर एक मीठी-भीनी खुशबूदार मुसकराहट कि दुश्मन भी देखे, तो दग रह जाये !

यह है शोइबके बूढे बाप, जैसे उनके दिलदिमागपर सीमेटका

प्लास्टर हो गया—भावनाशून्य और यह है बूढी माँ, जिसके विलापमें पूरा वातावरण प्रकम्पित।

यह लो, उसके भीतरका पठान जाग उठा—"लाओ, मुझे बन्दूक दो, मैं खूनका बदला खूनसे लूँगी।"

घरमें दो भरी बन्दूकें तैयार, पर यह है शहीद शोइबके कलेजेका टुकड़ा, वीर पतिकी वीर पत्नी, पीडासे पानी-पानी हुई भी स्थिर सन्तुलित—"अम्मी तुम इकले नहीं। अपने बहादुरको विदा करके हम दोनों बन्दूक उठाएंगे।"

वीर पत्नीकी थपथपीने वीर माताके शोकको दिव्यदृष्टि बना दिया—'देखना मेरे लालका खून कैसा रंग लाता है। वे आ रही हैं मेरे जवाहरकी फौजें, मेरे सरदारकी पलटन।' और वह चिल्लाई, जैसे किसी जलूसके आगे नारा लगा रही हो—'सारा हिन्दी यूनियन मेरा लाल।'

शोइब भाईको नहलाया गया, तो धरतीपर चू गया खून। उनकी वीर पत्नीने अदबसे उसे अपने माथेपर लगा लिया। ओह, शहीद शौहरके खूनसे रचा बहादुर पत्नीका ललाट और पत्नीके प्यार भरे पानोंसे रचे प्रियतमके अधर, हैदराबादकी किस्मत ही लाल हो गई और उस दिन हैदराबादके सेनापति इद्रीसने भारतीय जनरल राजेन्द्र सिंहके सामने अपनी तलवार झुकाई, तो हैदराबादके गर्वीले राजमुकुटने शाइबुल्लाकी शहादतको अपनी वन्दना ही तो अर्पित की!

आज कहाँ है हैदराबाद? उसके रजाकारी हाथ-पैर कट गये, निजामी सिर खण्डित हो गया और शोइबुल्ला? वह अब भी आकाशके तारोंमें बैठा—राजमहलके ठीक ऊपर, रातमें रोज मुसकुराया करता है!

प्रतिहिंसाके उन पावन क्षणोंमें !

[१]

१९३० मे पहली बार जेल गया, तो मुझे एक सालकी सादी सजा मिली। सादी सजा कि खाना-पीना सरकारके सिर और काम कुछ नही।

काम : जेलका काम—जेलकी मुशक्कत, चक्की, कोल्हू, गर्रा, मूंज-कुटाई, बान-बटाई और पूरा काम न करो तो पिटाई।

और पूरा काम——रामका नाम लो बैलके कन्धे और शेरके पंजे हो, तो वह पूरा हो। फाउण्टेन पेनवाले किसी बाबूके बसका वह कहॉ ?

सादी सजा हुई, तो खुश हुआ कि काम कुछ नही और कपडे-लत्ते भी अपने घरके, बस बाबू बने खूब पढेगे और मौज रहेगी, पर १५-२० दिनोके अनुभवने बताया कि पढनेके लिए ताजा दिमाग चाहिए और ताजे दिमागके लिए चिकनी खुराक।

१९३० मे जेलकी खुराक, ताजी तो इतनी कि बासी बचे, न कुत्ता खाये, पर चिकनाईसे उसका रिश्ता-वास्ता नही। फिर पढना जीवनका एक काम है, पढना ही तो जीवन नही हो सकता और यह है सादी सजा, जिसमे कोई काम नही।

यह जीवन भी एक अजीब पहेली है। जिन सख्त सजावालोको अपनी निगाहमे कभी दयनीय—कठोरजीवी समझा था, उन्हे सुबह अपने-अपने काम पर जाते देख, मै अपनी ही निगाहमे उनसे दयनीय हो उठा।

सादे कैदीको सुभीता है कि वह चाहे, तो मुशक्कत ले ले। सादा कैदी मुशक्कती बने, तो महीनेमे चार दिन रेमीशन (छूट) पाये, मानी कामका इनाम। अंग्रेजी सरकारसे जोश और बलिदानके उन तूफानी दिनोमे

इनाम पानेकी चाह तो कौन कायर करता, पर हर घड़ी बैठे रहने और अस्त-व्यस्त सोचकर थक जानेकी मुसीबतसे छूटनेकी भावना अवश्य थी।

मैं भी अब मुशक्कती कैदी था और मैंने अपनी मुशक्कत बाग-कमानमें चुनी थी। मुझे खेतका कोई अनुभव न था, फिर भी मैं अब १६ आदमियोंकी उस बाग-कमानका एक सदस्य था, जिसे जिला-जेलकी पूरी खेतीकी देख-भाल करनी थी—जेलकी खेतीका अर्थ है सब्जियोंकी खेती।

बाग-कमानमें १५ 'इखलाकी' कैदी थे और मैं अकेला कांग्रेसी। रामभज इस कमानका इंचार्ज था, मैं भी उसमें रलमिल गया और पहले दिन प्याजकी नोलाईका काम मैंने किया।

कामके साथ बातचीत सहज है और फिर जब कोई अजनबी अपने बीच हो! बातें होती रहीं, काम चलता रहा। मेरी बातें उनके लिए दिलचस्प थीं और ज्ञानवर्धक भी। अपना और अपने राष्ट्रका भविष्य पहली बार ही उनके कानोंने सुना था—एक नये ढंगके आशावादका स्पर्श उनके हृदयने शायद आज पहली बार ही पाया था। उनमें कुछ चोरीमें जेल आये थे, कुछ मार-पीटमें और कुछ कत्लके सन्देहमें भी, पर उन सभीमें मनुष्यताका ऐसा कोमल स्पर्श था कि दण्डकी क्रूरता जीवनमें पहली बार मुझे अनुभव हुई और मैंने सोचा जन्मजात चोर सम्भव नहीं और कत्ल, मार-पीट कोई शौकिया करता फिरे, यह असम्भव है। यों चोरीका आरम्भ किसी मजबूरी में है, तो मारपीट और कत्ल प्राय. एक क्षणिक आवेशके फल। एक मजबूरी और एक आवेश और पूरे जीवनकी बरबादी, निश्चय ही यह दण्डव्यवस्था स्वस्थ नहीं है।

पहलेही दिन हम लोग घुलमिल गये और मुझे सादे कैदीसे मुशक्कती होना बहुत अच्छा लगा।

[२]

कई दिन बाग-कमानमें काम करते हो गये, तो एक दिन मैंने रामभज

कहा—"मैं भी तुम्हारी कमानका एक कैदी हूँ, पर मैं देख रहा हूँ कि अपने हिस्सेका काम मैं पूरा नहीं कर पाता। काम तो पूरा होना ही है, इसलिए साफ है कि मेरे हिस्सेका काम मेरे साथियोंको करना पड़ता है। यह मुझे अच्छा नहीं लगता, इसलिए मैं चाहता हूँ कि कमानके लोगोंका मैं कुछ और काम कर दिया करूँ, जिससे मुझे सन्तोष रहे।"

रामभजका चेहरा बिगड़ गया। उसने कमानके ७-८ कैदियोंको, जो आस-पास काम कर रहे थे, अपनी कड़कदार आवाजसे बुलाया और डाटकर कहा—"क्यो बे, पण्डितजीसे काम करनेके बारेमें किसने कहा है कि कम काम करते हो?"

वे बेचारे सकपकाये और मैं कुछ कहनेको हुआ कि रामभजने गरज कर कहा—"अबे, दीखता नहीं तुम्हें कि ये महात्मागाँधीके खास आदमी है। इनका हमारे साथ मिलकर बैठ जाना ही बड़ी बात है।" मेरी तरफ देखकर वह बोला—"पण्डितजी, किसने कहा है आपसे काम करनेको। फिर ये है कौन आपसे कहनेवाले? जेलर भी कहे, तो आप कह देना कि रामभज करता है हमारे बदलेका काम।"

मैंने कहा—"रामभज भाई, मुझसे तो किसीने कहा ही नहीं कामको, तुम क्यों नाराज हो रहे हो? मैं तो आपही तुमसे कह रहा था कि मैं खेतका काम कम करता हूँ, तो कोई दूसरा ही काम कर दिया करूँ, जिससे मेरे साथियोंको कुछ आराम पहुँचे।"

रामभज हँसा। बोला—"क्या काम करेंगे आप हम लोगोंका?"

मैंने कहा—"मैं २-३ साथियोंके कपड़े रोज धो सकता हूँ। इन्हें पढ़ा सकता हूँ, कुछ देर रामायण सुना सकता हूँ।"

रामायणका नाम सुनकर रामभजका चेहरा खिल गया और दूसरे कैदी भी खुश हुए। दूसरे दिन मैं उन्हें कुछ देर रामायण सुनाने लगा और कुछको धरतीपर उगलीसे लिख अ आ इ ई भी पढ़ाने लगा।

[२]

रामायण सुनाते समय मैं देखता रामभज भाव-विभोर हो उठता और कथाकी प्रसंगधारामें डूब-डूब जाता।

एक दिन बातों-बात मैंने कहा—"रामभज भाई, तुम्हें भगवान् राममें बहुत श्रद्धा है और संयोगकी बात कि तुम्हारा नाम भी रामभज है।"

उसकी नसोंमें एक गुबारा-सा भर उठा और तड़का-सा बोला—"मास्टरजी, (मेरा अब यही नाम था) भगवान् और भक्तिकी बात तो मैं जानता नहीं, पर यह जरूर जानता हूँ कि राम एक मरद (मर्द) था।"

खोया-सा मैं उसकी तरफ देखता रह गया और तब उसे टटोलता-सा मैं बोला—"तो रामभज भाई, तुम रामकी वीरताके भक्त हो?"

"अजी, कोई साला अपनी औरतकी आबरूपर हाथ डाले और हम उससे बदला न लें, तो मरद क्या, जनखे ही हैं।" रामभजने पूरे आवेश में कहा और तब वह आपही आप बुदबुदाया—"मेरी कैद तो पहले भी कट गई थी और अब भी कट ही जायगी, पर उनकी गर्दन तो अब कट कर जुड़ नहीं सकती!"

मेरा ध्यान तुरन्त उसके कुर्तेकी पट्टीपर गया, तो वह नीली थी और जेलकी भाषामें इसका अर्थ—'हैबीच्युअल'—यानी रामभज आदतन अपराधी है और पहली बार ही जेल नहीं आया।

मैंने उसके आवेगको सहलाते हुए-से कहा—"रामभज भाई, तुम किस अपराधमें जेल आये हो?"

वह खुरपा जमीनमें गुभाये खोया-सा बैठा था। मेरे प्रश्नका झटका खाकर चौंका-सा बोला—"अपराध मास्टर!" वह मुसकराया—"जो अपराध मैंने किया है, उसे तो कचहरी नहीं मानती और जो किया नहीं, उसमें मैं दूसरी बार कैद काट रहा हूँ मास्टरजी!"

"जो अपराध तुमने किया है उसे कचहरी नहीं मानती?" मेरे

मुँहसे निकल पडा, तो सुना—"कचहरी उसे मानती, तो-तीजोका रस्सा मेरे गले न पड जाता ?"

और रामभज अपनेमें समाया-सा उठकर चल पडा। वह जेलकी बडी दीवारके सहारे-सहारे जा रहा था और मैं उसे देख रहा था। मोडपर पहुँचते ही उसने करीमको ललकारा—"अरे, एक झटकेमें तो आदमीका गला ककडी-सा कट जाता है और तेरेसे नाली नहीं कटती !"

मैंने सोचा—रामभजके भीतर कोई रहस्य सिन्धड रहा है, पर वह उसे चारों ओरसे इस तरह घोटे है कि कहीं धुआँ निकल नहीं पा रहा।

[४]

कोई महीने भरके प्रयत्नसे जो कुछ हाथ आया, वह रामभजके चरित्रका एक पवित्र पृष्ठ था। ऐसा पृष्ठ, जिसने मेरे बन्दी जीवनको एक अजीब उन्मादसे भर दिया।

रामभज, गाँवका मामूली माली, जिसकी झोंपडी तक अपनी जमीनपर नहीं और ठाकुर, गाँवका जमींदार, जिसके हाथमें सब कुछ, जिसके पास सब कुछ, जिसे किसी बातसे रोकनेवाला कोई नहीं !

रामभज काला-कलूटा और उसकी दुलहन रूपका लच्छा। जैसा रूप, वैसा ही नाम—चमेली। एक दिन किसी कामसे जमींदारकी हवेलीमें वह गई, तो जमींदारका मन ललचा। शक्तिका सिद्धान्त है—जो चाहूँ, सो पाऊँ। लौटते समय दहलीजमें उसने चमेलीका बायाँ हाथ थाम लिया। चमेलीने हाथ खींचा, तो प्रलोभनका पाश फैला—"सोनेमें पीली कर दूँगा चमेली, मैं दिलवाला आदमी हूँ !"

हाथकी खींच ढीली न पड, कुछ तेज ही हुई, तो भयका पंजा फैलकर सामने आया—"रूपके नशेमें मत रहना चमेली, मिट्टीमें मिला दूँगा—मैं जितना मीठा हूँ, उतना ही कडवा भी !"

चमेलीका दायाँ हाथ, जाने कब उठा और उसके पहुँचेपर कसी

चाँदी–गिलटकी भारी मट्ठी जाने कब जमींदारकी दायी पुटपुटीपर पड़ी। वह पड़ी कि चमेलीका हाथ छूटा और वह भागी।

रामभजने रिश्तेदारीसे लौटकर चमेलीकी बात सुनी कि वह उल्टे पैरों जमींदारकी तरफ दौड़ा। जमींदारकी आँख सूजकर ककोड़ा हो गई थी और वह बैठा उसे सेंक रहा था कि रामभज जा खड़ा हुआ।

"खून तो हमारा हमेशासे पिया जा रहा था ठाकुर साहब, अब इज्जत पर भी हाथ पड़ने लगा?" बिना किसी भूमिका और अदबके रामभजने कहा।

ठाकुर चोट खा चुका था, पर शायद आँखकी चोटसे दिलकी चोट गहरी थी। बेहयाईसे दाँत निकालकर ठाकुरने कहा—"जमींदारीकी हर चीजमें हमारा हक है रामभज, गुस्सेको थूक और अकलकी बातकर। हम जोरजबरसे जो चाहें कर सकते हैं, पर हम वैसे आदमी नहीं। जब तू यहाँ तक ऊँट-सी गर्दन उठाये आ गया है, तो सुन ले—मिलेगा तुझे वो जो तू माँगेगा, पर तुझे बात हमारी माननी पड़ेगी।"

आवेशके जिस झोंकेमें चमेलीकी मट्ठी चल गई थी, उसीमें रामभजने पूरे जोरसे ठाकुरके मुँह पर थूक दिया और घर चला आया।

कोई दो सप्ताह बाद पासके गाँवकी चोरीमें गये कुछ बर्तन थानेदारने रामभजकी झोंपड़ीमें बरामद किये और हथकड़ी लगाकर उसे थानेकी हवालातमें ला बन्द किया।

दूसरे दिन सुबह थानेदारने उससे कहा—"अबे, जो होना है, वह तो होता ही है, तू क्यों जमींदारसे दुश्मनी बाँधता है। हाथ जोड़कर माफी माँग ले और आरामसे अपने घर जा। कुछ तेरे ही साथ तो यह नई बात नहीं है।"

रामभज झुका नहीं, तो चोरीमें चालान हो गया। सबूत सब ठीक था ही, छः महीनेकी जेल उसे हो गई। उस दिन कचहरीमें गाँवका एक आदमी मिल गया, तो रामभजने कहा—"ठाकुरसे कह देना, जितने दिन

मैं जेल में हूँ, उतने ही दिन वो दुनियामें है। जो खाना हो, खा ले। जो करना हो, कर ले। बस मैं आया कि उसका लदान हुआ। देख तुझे कसम है, जरूर कह देना ठाकुरसे।"

चमेली अपने बापके घर रही, रामभज जेलमें। तीन सप्ताहका रेमीशन मिला और यों रामभजकी पहली जेल कोई सवापाँच महीनेमें पूरी हुई।

[५]

"खट खट, टक टक।"

"हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे"

"जय हनुमान ज्ञान गुण सागर"

सर्दीकी सन्नाटे भरी रात, कोई तडकमें चार बजे। गाँवके पक्के कुएँ पर डोल पडा, घिरडी खिची खरड-घरड, तब पानीकी छप-छरर और सरदीसे काँपते होटों भगवान्‌के नामका यह स्मरण। गाँव भरमें एक लहर-सी दौड़ गई—कौन आया है?

बढी हुई दाढी, गलेमें तुलसीकी माला, माथे पर चन्दन और कन्धोंको लपेटती चादर, सुबह ही सुबह रामभज गाँवके बडे बूढोंके पैरों पडता, हमजोलियोंसे गलबाही मिलता, बच्चोंको पुचकारता और माँ बहनोंको हाथ जोडता, सिर नमाता घर-घर घूमा। उसने सबसे एक ही बात कही—"जेलकी कालकोठरीमें भैया, खूब भगवान्‌का भजन किया और जीवनका सुफल पाया। भगवान् जो करते हैं, भला ही करते है। हनुमानजी ठाकुरके मनमें न बैठते, तो वह मुझे जेल न भिजवाता और मैं जेल न जाता, तो भगवान्‌की कृपा मुझपर न बरसती। मेरे मनमें किसीकी तरफसे कडवाहट नहीं है। सब रामके ही रूप है, फिर मैं किसे बुरा कहूँ?"

ठाकुरकी हवेलीपर भी वह गया और ठाकुरके पैरोंमें लोटकर खूब

रोया, उन्हें ही अपने इस नये जीवनका विधाता मानकर उसने उन्हें बहुत-बहुत धन्यवाद दिया और उन्हींके घर भोजन कर वह लौटा।

रामभजमें गजबका परिवर्तन हो गया था। सबके चार काम करके वह चलता, सबसे मीठा बोलता। और तो और, ठाकुर साहबकी हवेली-पर भी वह रोज चक्कर लगाता, उनकी चिलम मना करने पर भी भर देता, भैसकी कुट्टी-सानी देख लेता और उनके बच्चोंको खिला आता।

मन्दिरमें वह दोनों समय जाता, बड़ो कीर्तन करता और लहराकर गाता--परभुजी मेरे औगुण चित न धरो! पॉच-सात दिनमें ही लोग उसे भगतजी कहने लगे और उसका नाम रामभज भगत पड़ गया।

गॉवके बड़े-बूढ़े कहते--"भगवान्की माया है, गया था चोर बनकर, आया भगत होकर।"

शिवराम कांग्रेसी कहता--"योगिराज अरविन्द घोषको भी जेलमें ही ज्ञान प्राप्त हुआ था।"

ठाकुर साहबने एक दिन एकान्तमें बुलाकर कहा--"रामभज, किसी तरहकी दिक्कत हो तो मुझसे कहना और पुरानी बातको ..."

रामभज बीचमें ही बोल उठा--"आप तो गॉवके राजा हैं ठाकुर साहब! फिर आप अपने आप तो राजा नहीं हो गये। भगवान्ने ही तो आपको राजा और मुझे माली बनाया है। मुझे कोई दिक्कत होगी, तो दौड़कर परसादके लिए अपने भगवान्के द्वार पर आऊँगा ही।"

[६]

कोई दो महीने बाद, एक दिन शामका समय।

ठाकुर साहब अपनी हवेलीसे निकल रहे थे कि दरवाजे पर ही रामभजने उन्हें धर-दबोचा और जब तक उनका शोर सुन, घरके लोग

दौड़े', रामभजने अपनी चादरमें छुपे तेज गँडासेसे ठाकुर साहबका सिर कुट्टीकी मूठ-सा देहली पर रख, एक ही वारमें उडा दिया।

घरवालोंका चीत्कार सुन, पास-पडौसके लोग आये और तब गाँव आ जुडा, रामभजने ठाकुरसे अपना बदला ले लिया यह सब कह रहे थे, पर रामभजका कहीं पता न था।

रात में १०-११ बजे पासके पुलिस थानेमें रिपोर्ट लिखाई गई--"अभी-अभी रामभजने गँडासेसे ठाकुर साहबका खून कर दिया।" प्रत्यक्षदर्शी गवाहोंमें ठाकुर साहबके भाई-भतीजे और नौकर थे।

गाँवमें आनेपर कुछ लोगोंने थानेदारसे अपने बयानमें कहा--"राम-भजको दो दिनसे गाँवमें हमने नहीं देखा था और कई दिन पहलेसे वह घरवालीको लानेके लिए ससुराल जानेको कह रहा था।"

उसी रातमें गाँवसे कोई २०-२२ मील दूरके एक दूसरे थानेमें थाने-दारके घरमें चोरी करता हुआ एक चोर सुबह कोई ५ बजे पकडा गया, पर रिपोर्टमें दीवानने लिखाया--"मैं तडकमें कोई दो बजे राउण्डके लिए उठा, तो मुझे दारोगाजीके अस्तबलकी दीवारमें एक पाड दिखाई दिया। मैंने फौरन अपने दो सिपाहियोंको जगाकर, एकको तो अपने साथ पाड पर रख लिया और दूसरेको बडे दरवाजेसे भेजा कि वह दारोगाजीको आगाह कर दे। दारोगाजीके जागते ही, चोर पाडमेंसे निकलकर भागनेकी तैयारीमें ही था कि हम दोनोंने उसे दबोच लिया। उसके पाससे बहुत-सा जेवर मिला, जो उसने कमरके साथ एक फैंटेसे बाँध रक्खा था। रोशनीमें देखकर मैंने उसे पहचान लिया कि यह इलाकेका मशहूर चोर रामभज है, जो अभी कुछ दिन पहले चोरीके इलजाममें सजा भुगत चुका है।"

केस मजबूत था। रामभजको एक सालकी सजा हो गई। ठाकुर साहबके घरवालोंने खूनके मामलेमें रामभजको बहुत लपेटा, पर पूरा थाना

रामभजका गवाह था, उनकी एक न चली। रामभज हमारी बाग-कमानका इन्चार्ज बना, अपनी यही जेल काट रहा था, जबकि मैं एक मुशक्कती कैदीके रूपमें उसकी बाग-कमानमें आया।

रामभज बड़ा तगड़ा नौजवान था। उसने मुझे बताया कि ठाकुरको निमटाते ही मैंने कुलॉचे भरी और जगलो-जगल दूसरे थानेमें जा पहुँचा। वहाँका अता-पता मैं पहले ही देख आया था। बस पाखानोंकी तरफसे जरा-सी दीवार फिरक, भीतर घुस गया और आरामसे मठरियाँ खाता रहा, जैसे भलीमानुष दरोगनने मेरे ही लिए बनाकर रख रक्खी थी। जब हल्ला-गुल्ला मचा, तो मैंने भागनेका साग-सा किया और पकड़ा गया मास्टर!

[७]

एक दिन मैंने कहा—"रामभज भाई, काम तो तुमने बुद्धि और बहादुरीका किया, पर जिन्दगी तुम्हारी भी बर्बाद ही हो गई। तुम दो बार चोरीमें जेल आ चुके, अब पुलिस तुम्हें बाहर रहने नहीं देगी और जेल काटते तुम्हारा जीवन बीतेगा, तो रोते चमेलीका।

रामभज इतने जोरसे हँसा कि मैं भौंचक उसे देखता रह गया। तब बोला—"मास्टरजी, रामभज भगत तो अब जेल आ नहीं सकते। जेलसे छूटते ही चमेलीको लेकर बम्बई चला जाऊँगा और वहीं कमाऊँ-खाऊँगा। और नहीं तो फिर जिस थानेदारने जेल भेजा है, साल भर रात-दिन उसकी खिदमत करके निगरानीसे नाम कटा लूँगा। आप तो विद्वान् हैं—साँचको कहीं आँच नहीं। सेवा करे, सो मेवा पावै।"

उसकी योजना और आत्म-विश्वास दोनों इतने अद्भुत थे कि मैं उसे उस दिन देखता क्या रह गया, कल्पनामें आज भी देखता ही रह जाता हूँ।

रामभजके चरित्रकी झाँकी ठीक-ठीक मैं उस दिन देख पाया, जब

एक दिन उसने मुझसे चमेलीको खत लिखाया। यह खत तिकडमसे एक छूटने वाले कैदीके हाथो जाना था। वह कहींसे कागज तो ले आया, पर लिखूं किस चीजसे। हम सोच ही रहे थे कि जेलर साहब आ गये। रामभज उनके साथ हो लिया और कमाल देखिए कि बातो-बातोमे उनकी जेबसे पार्कर फाउण्टेनपेन खिसका लाया। मैने खत लिख दिया और रामभज वह पेन जेलरकी मेजपर रख आया। जेलके वार्डन तीन रुपयेमे उस पेनको खरीद रहे थे, पर रामभजने नही बेचा। जेलके जीवनमे तीन रुपये तीन गिन्नियॉ थी, पर उसने कहा—"अरे, मै कोई चोर हूँ। यह तो जरूरत थी कि पेन ले आया!"

अपना खाना, खानेका समय होनेके बाद आये कांग्रेसी कैदियोको खिलाकर भूखा रह जाना, उसके लिए मामूली बात थी। रातमे घण्ट बूढे कैदियो और बीमारोके पैर दबाना उसका रोजका काम था। नये कैदीके आनेपर वह उससे मिलता, उसे जेलके कायदे समझाता, जेलसे उसे परिचित कराता और सक्षेपमे उसे जेल काटनेके लायक बनाता। सच यह कि जेलमे देशके अनेक स्वयसेवक थे, पर मानवताका सर्वोत्तम स्वयसेवक तो रामभज ही था!

उस युगकी जेलोमे मिठाई दुर्लभ थी, फिर सी क्लासमे तो वह स्वर्ग का अमृत ही थी। लोगोकी जीभ मिठाई, तो क्या मिठासके लिए ही तरसा करती। रामभज छॉटकर बागसे एक बन्दगोभी लाता और उसके हरे पत्ते तोडकर भीतरके सफेद पत्ते निकालता। अब वह जगलोमेसे सबको एक-एक पत्ता देता चला जाता! लोग उसे रेवडी समझ धीरे-धीरे स्वाद लेकर खाते। अभावमे भाव कितना दुर्लभ हो जाता है और कितना सुलभ! किसी दिन वह प्याज-धनियेकी चटनी बनाता और एक-एक उंगली सबको बॉट आता। घरमे बैठे गोभीके उस पत्ते और चटनीकी इस उगलीके दान का महत्त्व कौन समझ सकता है?

रामभज न उस तरह भगत था, न इस तरह चोर, पर जनजीवनमे

वह रामभज भगत था, तो कानूनी जीवनमे अपने इलाकेका मशहूर चोर। जो हो, वह एक ऊँचे दर्जेका नागरिक था, जो इज्जतके लिए, गैरतके लिए, हँसकर कष्ट उठा सकता है, पर इज्जत और गैरतके दामो कभी आरामकी चाह नही करता।

मैने बार-बार सोचा है—उसकी जेल कानूनकी दृष्टिमे दण्ड थी, पर क्या धर्मकी दृष्टिमे यज्ञ और राष्ट्रीय दृष्टिमे बलिदान न थी ?

निश्चय ही उसने ठाकुरकी हत्या की थी—वह हत्यारा था, पर क्या यह हत्या राम द्वारा रावणकी हत्यासे कम शानदार थी ?

इतिहासमे राम राम है और रामभजका नाम नोट करनेकी उसे फुरसत कहाँ, पर मानवताके मंचपर अपनी पत्नीके सम्मानके लिए सब कुछ दावपर लगानेवालोंमे क्या दोनो एक साथ नही खडे है ?

उसे फाँसी नही लगी, वह शहीद न हो पाया, पर क्या फाँसीके लिए तैयार होकर ही उसने गँडासेकी मूँठपर हाथ नही रक्खा था ?

ज्ञानपीठके सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

दार्शनिक, आध्यात्मिक

१. भारतीय विचारधारा २)
२. अध्यात्म-पदावली ४॥)
३. वैदिक साहित्य ६)

कहानियाँ

४. संघर्षके बाद ३)
५. गहरे पानी पैठ २॥)
६. आकाशके तारे : धरतीके फूल २)
७. पहला कहानीकार २॥)
८. खेल-खिलौना २)
९. अतीतके कम्पन ३)
१०. जिन खोजा तिन पाइयाँ २॥)
११. नये बादल २॥)
१२. कुछ मोती कुछ सीप २॥)

कविता

१३. वर्द्धमान [महाकाव्य] ६)
१४. मिलन यामिनी ४)
१५. धूपके धान ३)
१६. मेरे बापू २॥)
१७. पञ्चप्रदीप २)

संस्मरण रेखाचित्र

१८. हमारे आराध्य ३)
१९. संस्मरण ३)
२०. रेखा-चित्र ४)
२१. जैन जागरणके अग्रदूत ५)

ऐतिहासिक

२२. खण्डहरोंका वैभव ६)
२३. खोजकी पगडण्डियाँ ४)
२४. चौलुक्य कुमारपाल ४)
२५. कालिदासका भारत [१-२] ८)
२६. हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन [भाग १,२] ५)

उर्दू-शायरी

२७. शेरो-शायरी [द्वि. स.] ८)
२८. शेरो-सुखन [पाँचो भाग] २०)

राजनीति

२९. एशियाकी राजनीति ६)

ज्योतिष

३०. भारतीय ज्योतिष ६)
३१. केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि ४)
३२. करलक्खण [द्वि० स०] ॥)

नाटक

३३. रजतरश्मि २॥)
३४. रेडियो-नाट्य-शिल्प २॥)
३५. पचपनका फेर २)
३६. और खाई बढ़ती गई २॥)

उपन्यास, सूक्तियाँ

३७. मुक्तिदूत ५)
३८. तीसरा नेत्र २॥)
३९. रक्तराग २)
४०. ज्ञानगङ्गा [सूक्तियाँ] ६)

निबन्ध, आलोचना

४१. जिन्दगी मुसकराई ४)
४२. संस्कृत साहित्यमें आयुर्वेद ३)
४३. शरत्के नारीपात्र ४॥)
४४. क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ? २॥)
४५. माटी हो गई सोना २)
४६. बाजे पायलियाके घुँघरू ४)

विविध

४७. द्विवेदी-पत्रावली २॥)
४८ ध्वनि और सङ्गीत ४)
४९. हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान १)